उपाद्घात.

प्रथम श्रीकुंदकुंदाचार्य गाथा बद्ध करे, समैसार नाटक विचारि नाम दयो है ॥ ताहीके परंपरा अमृतचंद्र भये तिन्हे, संसकृत कलसा समारि सुख लयो है ॥ प्रगटे बनारसी गृहस्थ सिरीमाल अब, किये है कवित्त हिए बोध बीज बोया है ॥ शबद अनादि तामें अरथ अनादि जीव, नाटक अनादियों अनादिहीको भयो है ॥ १ ॥

ग्रंथकी महिमा.

मोक्ष चलिवे शकोन करमको करे बौन, जाको रस भौन बुध लोण ज्यों घुलत है ॥ गुणको गरंथ निरगुणको सुगम पंथ, जाको जस कहत सुरेश अकुलत है ॥ याहीके जे पक्षी ते उड़त ज्ञान गगनवें, याहीके विपक्षी जग जालमें रुलत है ॥ हाटकसो विमल विराटकसो विसतार, नाटक सुनत हिय फाटक खुलत है ॥ २ ॥

अनुक्रमणिका. ३१ सा.

जीव निरजीव करता करम पाप पुन्य, आश्रव संवर तिरजरा बंध मोक्ष है सरव विशुद्धि स्यादवाद साध्य साधक, दुवादस दुवार धरे समैसार कोष है ॥ दरवानुयोग दरवानुयोग दूर करे, निगमको नाटक परम रस पोष है ॥ ऐसा परमागम बनारसी वखाने यामें, ज्ञानको निदान शुद्ध चारितकी चोख है ॥ ३ ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

अथ श्रीसमयसार नाटक प्रारंभ ।

अथ श्रीपार्श्वनाथजीकी स्तुति ॥ झंझराकी चाल ॥ सवैया ॥ ३१ ॥

कमर भरमजग तिमिर हरन खग, उरग लखन पग सिवमग दरसि ॥ निरखत नयन भविकजल वरषत हरषत अमित भविकजन सरसि ॥ मदन कदन जित परम धरमहित, सुमरत भगत भगतसत्र डरसि ॥ सजल जलदतन मुकुटसपत फन, कमठदलनजिन नमत बनरसि ॥ १ ॥

अब समस्तलघु एकस्वर चित्रकाव्य ॥ छप्पयछंद ॥ पुनः ।
श्रीपार्श्वनाथजीकी स्तुति.

सकल करम खल दलन, कमठ सठ पवन कनक नग ॥ धवल परम पद रमन, जगतजन अमल कमल खग ॥ परमत जलधर पवन, सजलघन समतन समकर ॥ परअघ रजहर जलद, सकलजन नत भव भयहर ॥ यमदलन नरकपद क्षयकरन, अगम अतट भव जलतरन ॥ वर सबल मदन वन हर दहन, जयजय परम अभयकरन ॥ २ ॥

पुनः सवैया ३१ सा.

जिन्हके वचन उर धारत युगल नाग, भये धरनिंद पदमावती पलकमें ॥ जाके नाममहिमासौ कुधातु कनककरै पारसपाखान नामी भयोहै खलकमें ॥ जिन्हकी जनमपुरी नामकेप्रभाव हम, आपनौं स्वरूप लख्यो भानुसो

झलकमें ॥ तेई प्रभुपारस महारसके दाता अब, दीजे मोहिसाता दृग-लीलाकी ललकमें ॥ ३ ॥

अब श्रीसिद्धकी स्तुति ॥ छंदअडिल्ल.

अविनासी अविकार परमरस धाम है ॥ समाधान सरवंग सहज अभिराम है ॥ शुद्धबुद्ध अविरुद्ध अनादि अनंत है ॥ जगत सिरोमणि सिद्ध सदा जयवंत है ॥ ४ ॥

अब श्रीसाधुकी स्तुति ॥ सवैया ३१ सा.

ग्यानको उजागर सहज सुखसागर, सुगुन रतनागर विरागरस भऱ्यो है ॥ सरनकी रीत हरै मरनको भै न करै, करनसों पीठदे चरण अनुसऱ्यो है ॥ धरमको मंडन भरमको विहंडनजु, परम नरम व्हैकै करमसो लऱ्यो है ॥ ऐसोमुनिराज भुवलोकमें विराजमान, निरखि बनारसी नमस्कार कऱ्यो है ॥ ५ ॥

अब सम्यग्दृष्टीकी स्तुति ॥ सवैया २३ सा.

भेदविज्ञान जग्यो जिन्हकेघट, सीतल चित्त भयो जिमचंदन ॥ केलिकरे शिव मारगमें, जगमाहि जिनेश्वरके लघुनंदन ॥ सत्यस्वरूप सदा जिन्हके, प्रगट्यो अवदात मिथ्यात निकंदन ॥ शांतदशा तिनकी पहिचानि, करे करजोरि बनारसी वंदन ॥ ६ ॥

स्वारथके सांचे परमारथके सांचे चित्त, सांचे सांचे वैन कहे सांचे जैनमती है ॥ काहूके विरुद्धी नांही परजाय बुद्धी नांही, आतमगवेषी न गृहस्थ है न यती है ॥ रिद्धिसिद्धि वृद्धी दीसै घटमें प्रगट सदा, अंतरकी लछिसौं

अजाची लक्षपती है ॥ दास भगवंतके उदास रहै जगतसौं, सुखिया सदैव ऐसे जीव समकिती है ॥ ७ ॥

जाकै घटप्रगट विवेक गणधरकोसो, हिरदे हरख महा मोहको हरतु है ॥ सांचा सुख मानें निज महिमा अडोल जानें, आपुहीमें आपनो स्वभावले धरतु है ॥ जैसे जलकर्दम कुतकफल भिन्नकरे, तैसे जीवअजीव विलछन करतु है ॥ आतम सगतिसाधे ग्यानको उदोआराधे, सोई समकिती भव-सागर तरतु है ॥ ८ ॥

धरम न जानत बखानत भरमरूप, ठौरठौर ठानत लराई पक्षपातकी ॥ भूल्यो अभिमानमें न पावधरे धरनीमें, हिरदेमें करनी विचारे उतपातकी ॥ फिरे डांबाडोलसो करमके कलोलनिमें, व्हैरही अवस्थाज्यूं बभूल्याकैसे पातकी ॥ जाकीछाती तातीकारी कुटिल कुवांती भारी, ऐसो ब्रह्मघाती है मिथ्याती महापातकी ॥ ९ ॥

दोहा.

वंदौं सिवअवगाहना, अर वंदो सिवपंथ ।
जसु प्रसाद भाषा करो, नाटकनाम गिरंथ ॥ १० ॥

अब कवीवर्णन सवैया ॥ २३ ॥

चेतनरूप अनूप अमूरत, सिद्धसमान सदापद मेरो ॥ मोह महातम आतम अंग, कियो परसंग महा तम घेरो ॥ ज्ञानकला उपजी अब मोहिं, कहूं गुणनाटक आगम केरो ॥ जासु प्रसाद सिधे सिवमारग, वेगि मिटे घटवास वसेरो ॥ ११ ॥

अब कवि लघुता वर्णन ॥ सवैया ॥ ३१ सा.

जैसे कोऊ मूरख महासमुद्र तरिवेको, भुजानिसो उद्यूत भयोहै तजि नावरो ॥ जैसे गिरि ऊपरि विरखफल तोरिवेको, वामन पुरुष कोऊ उमगे उतावरो ॥ जैसे जल कुंडमें निरखि ससि प्रतिविंव, ताके गहिवेको कर-नीचोकरे टावरो ॥ तैसे मैं अलपबुद्धि नाटक आरंभ कीनो, गुनीमोही हँसेंगे कहेंगे कोऊ वावरो ॥ १२ ॥

जैसे काहू रतनसौ बींध्यो है रतन कोऊ, तामें सूत रेसमकी डोरी पोयगई है ॥ तैसे वुद्धटीकाकरी नाटक सुगमकीनो, तापरि अलपबुद्धि सूधी परनई है ॥ जैसे काहू देशके पुरुष जैसी भापा कहै, तैसी तिनहूके वालकनि सीखलई है ॥ तैसे ज्यौ गरंथको अरथ कह्यो गुरु त्योंही, मारी मति कहिवेको सावधान भई है ॥ १३ ॥

कवहू सुमति व्है कुमतिको विनाश करै, कवहू विमलज्योति अंतर जगतिहै ॥ कवहू दयाल व्है चित्त करत दयारूप, कवहू सुलालसा व्है लोचन लगाति है ॥ कवहू कि आरती व्है प्रभुसनमुख आवै, कवहू सुभारती व्है वाहरि वगति है ॥ धरेदशा जैसी तव करे रीति तैसी ऐसी, हिरदे हमारे भगवंतकी भगति है ॥ १४ ॥

मोक्ष चलिवे शकोन कमरको करेवोन, जाके रस भौने वुध लोनज्यौं धुलत है ॥ गुणको गरंथ निरगुणको सुगमपंथ, जाको जस कहत सुरेश अकुलत है ॥ याहीके जु पक्षीते उड़त ज्ञानगगनमें, याहीके विपक्षी जग-जालमें रुलत है ॥ हाटकसो विमल विराटकसो विसतार, नाटक सुनत हिये फाटक खुलत है ॥ १५ ॥

दोहा.

कहूं शुद्ध निश्चयकथा, कहूं शुद्ध व्यवहार ।
मुकति पंथ कारन कहूं, अनुभौको अधिकार ॥ १६ ॥
वस्तु विचारत ध्यावतैं, मनपावै विश्राम ।
रस स्वादृत सुख ऊपजै, अनुभौ याको नाम ॥ १७ ॥
अनुभौ चिंतामणि रतन, अनुभव है रस कूप ।
अनुभौ मारग मोक्षको, अनुभौ मोक्ष स्वरूप ॥ १८ ॥

सवैया ॥ ३१ सा.

अनुभौके रसको रसायण कहत जग, अनुभौ अभ्यास यहू तीरथकी ठौर है ॥ अनुभौकी जो रसा कहावै सोई पोरसासु, अनुभौअधोरसासु ऊरधकी दौर है ॥ अनुभौकी केलिइह कामधेनु चित्रावेलि, अनुभौको स्वाद-पंच अमृतको कौर है ॥ अनुभौ करम तोरे परमसो प्रीति जोरे, अनुभौ समान न धरम कोऊ और है ॥ १९ ॥

दोहा.

चेतनवंत अनंतगुण, पर्यय शक्ति अनंत ।
अलख अखंडित सर्वगत, जीवद्रव्य विरतंत ॥ २० ॥
फरस वर्ण रस गंधमय, नरदपास संठान ।
अनुरूपी पुद्गल दरव, नभ प्रदेश परवान ॥ २१ ॥
जैसे सलिल समूहमें, करै मीनगति कर्म ।
तैसें पुदगल जीवको, चलन सहाई धर्म ॥ २२ ॥

ज्यौं पंथी ग्रीषम समै, बैठे छाया मांहि ।
त्यौं अधर्मकी भूमिमें, जड़ चेतन ठहरांहि ॥ २३ ॥
संतत जाके उदरमें, सकल पदारथ वास ।
जो भाजन सब जगतको, सोइ द्रव्य आकाश ॥ २४ ॥
जो नवकरि जीरन करै, सकल वस्तुथिति ठांनि ।
परावर्त वर्तन धरै, कालद्रव्य सो जांनि ॥ २५ ॥
समता रमता उरधता, ज्ञायकता सुखभास ।
वेदकता चैतन्यता, ये सब जीवविलास ॥ २६ ॥
तनता मनता वचनता, जड़ता जडसंमेल ।
लघुता गरुता गमनता, ये अजीवके खेल ॥ २७ ॥
जो विशुद्धभावनि बंधै, अरु ऊरधमुख होइ ।
जो सुखदायक जगतमें, पुन्यपदारथ सोइ ॥ २८ ॥
संक्लेश भावनि बंधै, सहज अधोमुख होइ ॥
दुखदायक संसारमें, पापपदारथ सोइ ॥ २९ ॥
जोई कर्म उदोत धारि, होइ क्रियारस रत्त ।
करषै नूतन कर्मकौ, सोई आश्रव तत्व ॥ ३० ॥
जो उपयोग स्वरूप धरि, वरतैं जोग विरत्त ।
रोकै आवत करमकों, सो है संवर तत्व ॥ ३१ ॥
पूरव सत्ताकर्म करि, थिति पूरण जो आउ ।
खिरवेकौं उद्दित भयो, सो निर्जरा लखाउ ३२ ॥

जो नवकर्म पुरानसौं, मिलैं गंठिदिढ होइ।
शक्ति बढ़ावै वंशकी, बंधपदारथ सोइ ॥ ३३ ॥
थितिपूरन करि कर्म जो, खिरै बंधपद भान।
हंसअंस उज्जल करै, मोक्षतत्व सो जान ॥ ३४ ॥
भाव पदारथ समय धन, तत्व वित्त वसु दर्व।
द्रविण अर्थ इत्यादि बहु, वस्तु नाम ये सर्व ॥ ३५ ॥

अब शुद्ध जीवद्रव्यके नाम कहे हैं। सवैया ३१ सा.

परमपुरुष परमेसर परमज्योति, परब्रह्म पूरण परम परधान है॥ *अनादि अनंत अविगत अविनाशी अज, निरदुंद मुकत मुकुंद अमलान है॥* निराबाध निगम निरंजन निरविकार, निराकार संसार सिरोमणि सुजान है॥ सरवदरसी सरवज्ञ सिद्धस्वामी शिव, धनी नाथ ईश मेरे जगदीश भगवान है॥ ३६ ॥

अब संसारी जीवद्रव्यके नाम कहे हैं॥ सवैया ३१ सा.

चिदानंद चेतन अलख जीव, समैसारा बुद्धरूप अबुद्ध अशुद्ध उपयोगी है॥ चिद्रूप स्वयंभू चिनमूरति धरमवंत प्राणवंत प्राणी जंतु भूत भव भोगी है॥ गुणधारी कलाधारी भेषधारी, विद्याधारी, अंगधारी संगधारी योगधारी जोगी है॥ चिन्मय अखंड हंस अक्षर आतमराम, करमको करतार परम वियोगी है॥ ३७ ॥

दोहा.

खं विहाय अंबर गगन, अंतरीक्ष जगधाम।
व्योम वियत नभ मेघपथ, ये अकाशके नाम ॥ ३८ ॥

यम कृतांत अंतक त्रिदश, आवर्ती मृतथान ।
प्राणहरण आदिततनय, कालनाम परवान ॥ ३९ ॥
पुन्य सुकृत ऊर्ध्ववदन, अकररोग शुभकर्म ।
सुखदायक संसारफल, भाग बहिर्मुख धर्म ॥ ४० ॥
पाप अधोमुख येन अघ, कंपरोग दुखधाम ।
कलिल कलुष किल्विष दुरित, अशुभ कर्मके नाम॥४१॥
सिद्धक्षेत्र त्रिभुवन मुकुट, अविचल मुक्त स्थान ।
मोक्ष मुक्ति वैकुंठ सिव, पंचम गति निरवान ॥ ४२ ॥
प्रज्ञा धिषना सेमुषी, धी मेधा मति बुद्धि ।
सुरति मनीषा चेतना, आशय अंश विशुद्धि ॥ ४३ ॥
निपुण विचक्षण विबुधबुध, विद्याधर विद्वान ।
पटु प्रवीण पंडित चतुर, सुधी सुजन मतिमान ॥ ४४ ॥
कलावंत कोविद कुशल, सुमन दक्ष धीमंत ।
ज्ञाता सज्जन ब्रह्मविद, तज्ञ गुणी जन संत ॥ ४५ ॥
मुनि महंत तापस तपी, भिक्षुक चारित धाम ।
जती तपोधन संयमी, व्रती साधु रिष नाम ॥ ४६ ॥
दरस विलोकन देखनों, अवलोकन द्रिगचाल ।
लखन द्रिष्टि निरखन जुवन, चितवन चाहन भाल ॥४७॥
ज्ञान बोध अवगम मनन, जगतभान जगजान ।
संयम चारित आचरन, चरन वृत्ति थिरवान ॥ ४८ ॥

सम्यक सत्य अमोघ सत, निःसंदेह निरधार ।
ठीक यथातथ उचित तथ, मिथ्या आदि अकार ॥४९॥
अजथारथ मिथ्या मृषा, वृथा असत्य अलीक ।
मुधा मोघ निःफल वितथ, अनुचित असत अठीक ॥५०॥

॥ इति श्रीसमयसारनाटकमध्ये नाममाला सूचनिका संपूर्णा ॥

अथ समयसार नाटक मूलग्रंथ प्रारंभः ।

चिदानंद भगवान्‌की स्तुति ॥ मंगलाचरण ॥ दोहा.

शोभित निज अनुभूति युत, चिदानंद भगवान ।
सार पदारथ आतमा, सकल पदारथ जान ॥ १ ॥

अब आत्माको वर्णन करि सिद्ध भगवानको नमस्कार.
सवैया २३ सा.

जो अपनी द्युति आप विराजित, है परधान पदारथ नामी ॥ चेतन अंक सदा निकलंक, महा सुख सागरको विसरामी ॥ जीव अजीव जिते जगमें, तिनको गुण ज्ञायक अंतरजामी ॥ सो सिवरूप वसे सिवनायक, ताहि विलोकि नमै सिवगामी ॥ २ ॥

अब जिनवाणीका वर्णन ॥ सवैया २३ सा.

जोगधरी रहे जोगसु भिन्न, अनंत गुणातम केवलज्ञानी ॥ तासु हृदै द्रहसो निकसी, सरिता समव्है श्रुत सिंधु समानी ॥ याते अनंत नयातम लक्षण, सत्य सरूप सिद्धांत वखानी ॥ बुद्ध लखे दुरबुद्ध लखेनाहि, सदा जगमाहि जगे जिनवाणी ॥ ३ ॥

॥ अथ प्रथम जीवद्वार प्रारंभ ॥ १ ॥ कवि व्यवस्था कथन ॥ छप्पैछंद.

हूं निश्चय तिहु काल, शुद्ध चेतनमय मूरति । पर परणति संयोग, भई जड़ता विस्फूरति । मोहकर्म पर हेतु पाई, चेतन पर रच्चय । ज्यों धतूर रस पान करत. नर बहुविध नच्चय । अब समयसार वर्णन करत, परम शुद्धता होहु मुझ । अनयास बनारसीदास कही, मिटो सहज भ्रमकी अरुझ ॥ ४ ॥

अब आगम (शास्त्र) माहात्म्य कथन ॥ सवैया ३१ सा.

निहचेमें एकरूप व्यवहारमें अनेक, याही नै विरोधनें जगत भरमायो है ॥ जगके विवाद नाशिवेको जिनआगम है, ज्यामें स्यादवादनाम लक्षण सुहायो है ॥ दरसनमोह जाको गयो है, सहजरूप, आगम प्रमाण ताके हिरदेमें आयो है ॥ अनयसो अखंडित अनूतन ऽनंत तेज, ऐसो पद पूरण तुरंत तिन पायो है ॥ ५ ॥

अब निश्चय नय अर व्यवहार नय स्वरूप कथन ॥ सवैया २३ सा.

ज्यों नर कोऊ गिरे गिरिसो तिहि, होइ हितू जु गहै दृढवाही ॥ त्यौ बुधको विवहार भलो, तवलौ जवलौ सिव प्रापति नाहीं ॥ यद्यपि यो परमाण तथापि, सधै परमारथ चेतन माही ॥ जीव अव्यापक है परसो, विवहारसु तो परकी परछाहीं ॥ ६ ॥

अब सम्यक्दर्शन स्वरूप व्यवस्था ॥ सवैया ३१ सा.

शुद्धनय निहचै अकेला आप चिदानंद, आपनेही गुण परजायको गहत है ॥ पूरण विज्ञानघन सो है व्यवहार माहि, नव तत्वरूपी पंच द्रव्यमें रहत है ॥ पंचद्रव्य नवतत्व न्यारे जीव न्यारो लखे सम्यक दरस यह

और न गहत है ॥ सम्यक दरस जोई आतम सरूप सोइ, मेरे घट प्रगटो बनारसी कहत है ॥ ७ ॥

अब जीवद्रव्य व्यवस्था अग्निदृष्टांत ॥ सवैया ३१ सा.

जैसे तृण काष्ट वास आरने इत्यादि और, ईंधन अनेक विधि पावकमें दहिये ॥ आकृति विलोकत कहावे आगि नानारूप, दीसे एक दाहक स्वभाव जब गहिये ॥ तैसे नव तत्वमें भया है बहु भेषी जीव, शुद्धरूप मिश्रित अशुद्धरूप कहिये ॥ जाहीक्षण चेतना सकतिको विचार कीजे, ताहीक्षण अलख अभेदरूप लहिये ॥ ८ ॥

पुनः जीवद्रव्य व्यवस्था बनवारी दृष्टांत ॥ ३१ सवैया सा.

जैसे बनवारीमें कुधातुके मिलाप हेम, नानाभांति भयो पै तथापि एक नाम है ॥ कसीके कसोटी लीक निरखे सराफ ताहि, बानके प्रमाणकरि लेतु देतु दाम है ॥ तैसेही अनादि पुद्गलसौ संजोगी जीव, नवतत्वरूपमें अरूपी महा धाम है ॥ दीसे अनुमानसौ उद्योतवान ठौरठौर, दूसरो न और एक आतमाही राम है ॥ ९ ॥

अब अनुभव व्यवस्था सूर्यदृष्टांत ॥ सवैया ३१ सा.

जैसे रवि मंडलके उदै महि मंडलमें, आतम अटल तम पटल विलातु है ॥ तैसे परमातमको अनुभौ रहत जोलों, तोलों कहूं दुविधान कहुं पक्षपात है ॥ नयको न लेस परमाणको न परवेस, निक्षेपके वंसको विध्वंस होत जातु है ॥ जेजे वस्तु साधक है तेऊ तहां बाधक है, बाकी रागद्वेषकी दशाकी कोन बातु है ॥ १० ॥

अब जीव व्यवस्था वचनद्वार कथन ॥ अडिल्ल.

आदिअंत पूरण स्वभाव संयुक्त है। पर सरूप पर जोग कल्पना मुक्त है ॥ सदा एकरस प्रगट कही है जैनमें । शुद्ध नयातम वस्तु विराजे बैनमें ॥ ११ ॥

अब हितोपदेश कथन ॥ कवित्त.

सतगुरु कहे भव्यजीवनसो, तोरहु तुरत मोहकी जेल ॥ समकितरूप गहो अपनो गुण, करहु शुद्ध अनुभवको खेल ॥ पुद्गलपिंड भावरागादिक, इनसो नहीं तिहारो मेल ॥ ये जड़ प्रगट गुपत तुम चेतन, जैसे भिन्न तोय अरु तेल ॥ १२ ॥

अब ज्ञाता विलास कथन ॥ सवैया ३१ सा.

कोऊ बुद्धिवंत नर निरखे शरीर घर, भेदज्ञान दृष्टीसो विचार वस्तु वास तो ॥ अतीत अनागत वरतमान मोहरस, भीग्यो चिदानंद लखे बंधमें विलास तो ॥ बंधको विदारि महा मोहको स्वभाव डारि, आतमको ध्यान करे देखे परगास तो ॥ करम कलंक पंक रहित प्रगटरूप, अचल अबाधित विलोके देव सासतो ॥ १३ ॥

अब गुणगुणी अभेद कथन ॥ सवैया २३ ॥ सा.

शुद्ध नयातम आतमकी, अनुभूति विज्ञान विभूति है सोई ॥ वस्तु विचारत एक पदारथ, नामके भेद कहावत दोई ॥ यो सरवंग सदा लखि आपुहि, आतम ध्यान करे जब कोई ॥ मेटि अशुद्ध विभावदशा तब, सिद्ध स्वरूपकी प्रापति होई ॥ १४ ॥

अब ज्ञाताका चिंतवन कथन ॥ सवैया ॥ ३१ सा.

अपनेही गुण परजायसो प्रवाहरूप, परिणयो तिहूं काल अपने आधा-रसो ॥ अंतर बाहिर परकाशवान एकरस, क्षीणता न गहे भिन्न रहे भौ विकारसो ॥ चेतनाके रस सरवंग भरिरह्या जीव, जैसे लूण कांकर भर्यो है रस क्षारसो ॥ पूरण स्वरूप अति उज्जल विज्ञानघन, मोको होहु प्रगट विशेष निरवारसो ॥ १५ ॥

अब द्रव्य पर्याय अभेद कथन ॥ कविता.

जहां ध्रुवधर्म कर्मक्षय लच्छन, सिद्ध समाधि साध्यपद सोई ॥ शुद्धो-पयोग जोग महि मंडित, साधक ताहि कहे सबकोई ॥ यो परतक्ष परोक्ष स्वरूपसो, साधक साध्य अवस्था दोई ॥ दुहुको एक ज्ञान संचय करि, सेवे सिंवे वंछक थिर होई ॥ १६ ॥

अब द्रव्य गुण पर्याय भेद कथन ॥ कवित्त.

दरसन ग्यान चरण त्रिगुणातम; समलरूप कहिये विवहार ॥ निहचै दृष्टि एक रस चेतन, भेद रहित अविचल अविकार ॥ सम्यक्दशा प्रमाण उभयनय, निर्मल समल एकही वार ॥ यौं समकाल जीवकी परणति, कहे जिनेंद गहे गणधार ॥ १७ ॥

अब व्यवहार कथन ॥ दोहा.

एकरूप आतम दरव, ज्ञान चरण दृग तीन ।
भेदभाव परिणाम यो; विवहारे सु मलिन ॥ १८ ॥

अब निश्चयरूप कथन ॥ दोहा.

यद्यपि समल व्यवहार सो, पर्यय शक्ति अनेक ।
तदपि नियत नय देखिये, शुद्ध निरंजन एक ॥ १९

अब शुद्ध कथन ॥ दोहा.

एक देखिये जानिये, रमि रहिये इक ठौर।
समल विमल न विचारिये, यहै सिद्धि नहि और ॥२०॥

अब शुद्ध अनुभव प्रशंसा कथन ॥ सवैया ३१ सा.

जाके पद सोहत सुलक्षण अनंत ज्ञान, विमल विकाशवंत ज्योति लह लही है ॥ यद्यपि त्रिविधिरूप व्यवहारमें तथापि, एकता न तजे यो नियत अंग कही है ॥ सो है जीव कैसीहू जुगतिके सदीव ताके, ध्यान करवेकूं मेरी मनसा उमगी है ॥ जाते अविचल रिद्धि होत और भांति सिद्धि, नाहीं नाहीं नाहीं यामे धोखो नाही सही है ॥ २१ ॥

अब ज्ञाताकी व्यवस्था ॥ २३ ॥ सा.

कै अपनो पद आप संभारत, कै गुरूके मुखकी सुनि वानी ॥ भेदविज्ञान जग्यो जिन्हके, प्रगटी सुविवेक कला रजधानी ॥ भाव अनंत भये प्रतिबिंबित, जीवन मोक्षदशा ठहरानी ॥ ते नर दर्पण जो अविकार, रहे थिररूप सदा सुख दानी ॥ २२ ॥

अब भेदज्ञान प्रशंसा कथन ॥ सवैया ३१ सा.

याही वर्तमानसमै भव्यनको मिट्यो मोह, लग्योहै अनादिको पग्यो है कर्ममलसो ॥ उदै करे भेदज्ञान महा रुचिको निधान, ऊरको उजारो भारो न्यारो दुंद दलसो ॥ जाते थिर रहे अनुभौ विलास गहे फिरि, कबहूं अपनायौ न कहे पुदगल सो ॥ यह करतूती यो जुदाइ करे जगतसो, पावक ज्यो भिन्न करे कंचन उपल सो ॥ २३ ॥

अब परंमार्थकी शिक्षा कथन ॥ सवैया ३१ सा.

बनारसी कहे भैया भव्य सुनो मेरी सीख, केहूं भांति कैसेहूके ऐसा काज कीजिये ॥ एकहू मुहूरत मिथ्यात्वको विध्वंस होइ, ज्ञानको जगाय अंस हंस खोज लीजिये ॥ वाहीको विचार वाको ध्यान यह कौतूहल, योंही भर जनम परम रस पीजिये ॥ तजि भववासको विलास सविकार-रूप, अंत करि मोहको अनंतकाल जीजिये ॥ २४ ॥

अब तीर्थंकरके देहकी स्तुति ॥ सवैया ३१ सा.

जाके देह द्युतिसों दसो दिशा पवित्र भई, जाके तेज आगे सब तेज-वंत रुके हैं ॥ जाको रूप निरखि थकित महा रूपवंत, जाके वपु वाससों सुवास और लूके हैं ॥ जाकी दिव्यध्वनि सुनि श्रवणको सुखहोत, जाके तन लछन अनेक आय ढूके हैं ॥ तेई जिनराज जाके कहे विवहार गुण, निश्चय निरखि शुद्ध चेतनसों चूके हैं ॥ २५ ॥

जामें बालपनो तरुनापो वृद्धपनो नाहि, आयु परजंत महारूप महाबल है ॥ विनाही यतन जाके तनमें अनेकगुण, आतिसै विराजमान काया निर-मल है ॥ जैसे विन पवन समुद्र अविचलरूप, तैसे जाको मन अरु आसन अचल है ॥ ऐसे जिनराज जयवंत होउ जगतमें, जाके सुभगति महा मुकतिको फल है ॥ २६ ॥

अब जिन स्वरूप यथार्थ कथन ॥ दोहा.

जिनपद नाहि शरीरको, जिनपद चेतनमांहि ।
जिनवर्णन कछु और है, यह जिनवर्णन नांहि ॥ २७ ॥

अब पुद्गल अर चेतनके भिन्न स्वभाव दृष्टांत ॥ सवैया ३१ सा.

ऊंचे ऊंचे गढके कांगुरे यों विराजत हैं, मानो नभ लोक गीलिवेको

दांत दियो है ॥ सोहे चहुंओर उपवनकी सघन ताई, घेरा करि मानो भूमि लोक घेरि लियो है ॥ गहरी गंभीर खाई ताकी उपमा वताई, नीचो करि आनन पाताल जल पियो है ॥ ऐसा है नगर यामें नृपको न अंग-कोऊ, योंही चिदानंदसों शरीर भिन्न कियो है ॥ २८ ॥

अब तीर्थंकरकी निश्चै गुण स्वरूप स्तुति कथन ॥ सवैया ३१ सा.

जामें लोकालोकके स्वभाव प्रतिभासे सब, जगी ज्ञान शकति विमल जैसी आरसी ॥ दर्शन उद्योत लियो अंतराय अंत कियो, गयो महा मोह भयो परम महा ऋषी ॥ सन्यासी सहज जोगी जोगसूं उदासी जामें, प्रकृति पच्यासी लगरही जरि छारसी ॥ सोहे घट मंदिरमें चेतन प्रगटरूपें ऐसो जिनराज ताहि वंदत बनारसी ॥ २९ ॥

अब शुद्ध परमात्म स्तुतिका दृष्टांत कह कर निश्चय अर व्यवहारको निर्णय करे हैं ॥ कवित्त छंद.

तनु चेतन व्यवहार एकसें, निहचे भिन्न भिन्न है दोइ ॥ तनुकी स्तुति विवहार जीवस्तुति, नियतदृष्टि मिथ्याथुति सोइ ॥ जिन सो जीव जीव सो जिवनर, तनुजिन एक न माने कोइ ॥ ता कारण तिनकी जो स्तुति, सों जिनवरकी स्तुति नाहीं होइ ॥ ३० ॥

अब वस्तु स्वरूप कथन दृष्टांतते दृढ करत है ॥ सवैया २३ सा.

ज्यों चिरकाल गड़ी वसुधा महि, भूरि महानिधि अंतर गूझी ॥ कोउ उखारि धरे महि ऊपरि, जे दृगवंत तिने सब सूझी ॥ त्यों यह आतमकी अनुभूति, पड़ी जड़भाव अनादि अरूझी ॥ नै जुगतागम साधि कहीगुरु, लछन वेदि विचक्षण बूझी ॥ ३१ ॥

अब निश्चय आतम स्वरूप कथन ॥ अडिल्ल छंद.

कहे विचक्षण पुरुष सदा हूं एक हों । अपने रससूं भर्‍यो आपनी टेक हों ॥ मोहकर्म मम नांहिनांहि भ्रमकूप है । शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है ॥ ३३ ॥

अब ऐसा आपना स्वस्वरूप जाननेसे कैसी अवस्था प्राप्त होय है सो कहे है ॥ ज्ञान व्यवस्था कथन ॥ सवैया ३१ सा.

तत्वकी प्रतीतिसों लख्यो है निजपरगुण, दृग ज्ञान चरण त्रिविधी परिणयो है ॥ विसद विवेक आयो आछो विसराम पायो, आपुहीमें आपनो सहारो सोधि लयोहै ॥ कहत बनारसी गहत पुरुषारथको, सहज सुभावसों विभाव मिटि गयो है ॥ पन्नाके पकाये जैसे कंचन विमल होत, तैसे शुद्ध चेतन प्रकाश रूप भयो है ॥ ३४ ॥

अब विभाव छूटनेसे निज स्वभाव प्रगट होय तेऊपर नटी (नाचणारी स्त्री) को दृष्टांत कहे है ॥ वस्तु स्वरूप कथन ॥ पात्राका दृष्टांत ॥ सवैया ३१ सा.

जैसे कोउ पातर बनाय वस्त्र आभरण, आवत आखारे निसि आडोपट करिके ॥ दूहूओर दीवटि सवारि पट दूरि कीजे, सकल सभाके लोक देखे दृष्टि धरिके ॥ तैसे ज्ञान सागर मिथ्यात ग्रंथि भेदि करी, उमग्यो प्रगट रह्यो तिहुं लोक भरिके ॥ ऐसो उपदेश सुनि चाहिये जगत जीव, शुद्धता संभारे जग जालसों निकरिके ॥ ३५ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकका प्रथम जीवद्वार समाप्त भया ॥ १ ॥

द्वितीय अजीवद्वार प्रारंभ ॥ २ ॥

जीवतत्व अधियार यह, प्रगट कह्यो समझाय ।
अब अधिकार अजीवको, सुनो चतुर मन लाय ॥ १ ॥

अब ज्ञान अजीवकूं पण जाने है ताते संपूर्ण ज्ञानकी अवस्था निरूपण करे है ॥ सवैया ३१ सा.

परम प्रतीति उपजाय गणधर कीसी, अंतर अनादिकी विभावता विदारी है ॥ भेदज्ञान दृष्टिसों विवेककी, शकति साधि, चेतन अचेतनकी दशा निरवारी है ॥ करमको नाश करि अनुभौ अभ्यास धरि, हियेमें हरखि निज उद्धता संभारी है ॥ अंतराय नाश गयो शुद्ध परकाश भयो, ज्ञानको विलास ताको वंदना हमारी है ॥ २ ॥

अब गुरु परमार्थकी शिक्षा कथन करे है ॥ सवैया ३१ सा.

भैया जगवासी तूं उदासी व्हैके जगतसों, एक छ महीना उपदेश मेरो मान रे ॥ और संकलप विकलपके विकार ताजि, वैठिके एकंत मन एक ठोर आन रे ॥ तेरो घट सरतामें तूंही व्है कमल वाकों, तूंही मधुकर व्है सुवास पहिचान रे ॥ प्रापति न व्है हे कछू ऐसा तूं विचारत है, सही व्है है प्रापति सरूप योंही जान रे ॥ ३ ॥

अब जीव अर अजीवका जुदा जुदा लक्षण कहे है ॥ वस्तु स्वरूप कथन ॥ दोहा.

चेतनवंत अनंत गुण, सहित सु आतमराम ।
याते अनमिल और सब पुद्गलके परिणाम ॥ ४ ॥

अब ऐसी पिछान अनुभव विना न होय, तातै अनुभव प्रशंसा कथन करे है ॥ कवित्त.

जब चेतन संभारि निज पौरुष, निरखे निज दृगसों निज मर्म ॥ तब सुखरूप विमल अविनाशिक, जाने जगत शिरोमणि धर्म ॥ अनुभव करे शुद्ध चेतनको, रमे स्वभाव वमे सब कर्म ॥ इहि विधि सधे मुकतिको मारग, अरु समीप आवे शिव सर्म ॥

दोहा.

वरणादिक रागादि जड़, रूप हमारो नांहि ।
एकब्रह्म नहि दूसरो, दीसे अनुभव मांहि ॥ ६ ॥
खांडो कहिये कनकको, कनक म्यान संयोग ।
न्यारो निरखत म्यानसों, लोह कहे सबलोग ॥ ७ ॥
वरणादिक पुद्गल दशा, धरे जीव बहु रूप ।
वस्तु विचारत करमसों, भिन्न एक चिद्रूप ॥ ८ ॥
ज्यौं घट कहिये घीवको, घटको रूप न घीव, ।
त्यौं वरणादिक नामसों, जड़ता लहे न जीव ॥ ९ ॥
निराबाद चेतन अलख, जाने सहज सुकीव ।
अचल अनादि अनंत नित, प्रगट जगतमें जीव ॥ १० ॥

अब अनुभव विधान कथन ॥ सवैया ३१ सा.

रूप रसवंत मूरतीक एक पुदगल, रूपविन और यों अजीब द्रव्य द्विधा है ॥ च्यार हैं अमूरतीक जीवभी अमूरतीक, याहीतैं अमूरतीक वस्तु ध्यान

मुधा है ॥ औरसों न कवहू प्रगट आपाआपहीसों, ऐसो थिर चेतन स्वभाव शुद्ध सुधा है ॥ चेतनको अनुभौ आराधे जग तेई जीव, जिन्हके अखंड रस चाखवेकी क्षुधा है ॥ ११ ॥

अब मूढ स्वभाव वर्णन ॥ सवैया २३ सा.

चेतन जीव अजीव अचेतन, लक्षण भेद उभै पद न्यारे ॥ सम्यक्दृष्टि उदोत विचक्षण, भिन्न लखे लखिके निरवारे ॥ जे जगमांहि अनादि अखं-डित, मोह महा मदके मतवारे ॥ ते जड चेतन एक कहे, तिनकी फिरि टेक टरे नहिं टारे ॥ १२ ॥

अब ज्ञाताका विलास कथन ॥ सवैया २३ सा.

या घटमें भ्रमरूप अनादि, विलास महा अविवेक अखारो ॥ तामहि और सरूप न दीसत, पुद्गल नृत्य करे अति भारो ॥ फेरत भेप दिखावत कौतुक, मोज लिये वरणादि पसारो ॥ मोहसु भिन्न जुदो जडसों चिन्-मूरति नाटक देखन हारो ॥ १३ ॥

अब ज्ञान विलास कथन ॥ सवैया ३१ सा.

जैसे करवत एक काठ वीच खंड करे, जैसे राजहंस निरवारे दूध जलकों ॥ तैसे भेदज्ञान निज भेदक शकति सेती, भिन्न भिन्न करे चिदानंद पुदगलकों ॥ अवधिकों धावे मनपर्येकी अवस्था पावे, उमगिके आवे परमावधिके थलकों ॥ याही भांति पूरण सरूपको उदोत धरे, करे प्रतिविंवित पदारथ सकलकों ॥ १४ ॥

द्वितीय अजीवद्वार समाप्त हुआ ॥ २ ॥

तृतीय कर्ताकर्मक्रियाद्वार प्रारंभः ॥ ३ ॥

यह अजीव अधिकारको, प्रगट वखान्यो मर्म ।
अब सुनु जीव अजीवके, कर्ता क्रिया कर्म ॥ १ ॥

अब कर्मकर्तृत्वमें जीवकी कल्पना है सो भेदज्ञानसे छूटे है तातैं भेदज्ञानका महात्म कहै है ॥ ३१ सा.

प्रथम अज्ञानी जीव कहे मैं सदीव एक, दूसरो न और मैंही करता करमको ॥ अंतर विवेक आयो आपा पर भेद पायो, भयो बोध गयो मिटि भारत भरमको ॥ भासे छहो दरवके गुण परजाय सब, नासे दुख लख्यो मुख पूरण परमको ॥ करमको करतार मान्यो पुदगल पिंड, आप करतार भयो आतम धरमको ॥ २ ॥

जाही समै जीव देह बुद्धिको विकार तजे, वेदत स्वरूप निज भेदत भरमको ॥ महा परचंड मति मंडण अखंड रस, अनुभौ अभ्यास परकासत परमको ॥ ताही समे घटमें न रहे विपरीत भाव, जैसे तम नासे भानु प्रगटि धरमको ॥ ऐसी दशा आवे जब साधक कहावे तब, करता व्है कैसे करे पुद्गल करमको ॥ ३ ॥

अब प्रथम आत्माकूं कर्मको कर्त्ता माने पीछे अकर्ता माने है ।
सवैया ३१ सा.

जगमें अनादिको अज्ञानी कहे मेरो कर्म, करता मैं याको किरियाको प्रतिपाखी है । अंतर सुमति भासी जोगसूं भयो उदासी, ममता मिटाय

परजाय बुद्धि नाखी है ॥ निरभै स्वभाव लीनो अनुभौको रस भीनो, कीनो व्यवहार दृष्टि निहचेमें राखी है ॥ भरमकी डोरीतोरी धरमको भयो धोरी, परमसों प्रीत जोरी करमको साखी है ॥ ४ ॥

ज्ञानको सामर्थ्य कहे है ॥ ३१ सा.

जैसे जे दरव ताके तैसे गुण पराजय, ताहीसों मिलत पै मिले न काहु आनसों ॥ जीव वस्तु चेतन करम जड़ जाति भेद, ऐसे अमिलाप ज्यों नितंव जुरे कानसों ॥ ऐसो सुविवेक जाके हिरदे प्रगट भयो, ताको भ्रम गयो ज्यों तिमिर भागे भानसों ॥ सोइ जीव करमको करतासो दीसे पैहि, अकरता कह्यो शुद्धताके परमानसों ॥ ५ ॥

अब जीवके और पुद्गलके जुदे जुदे लक्षण कहे है ॥ छप्पै छंद.

जीवन ज्ञानगुण सहित, आपगुण परगुण ज्ञायक । आपा परगुण लखे, नांहि पुद्गल इहि लायक । जीवरूप चिद्रूप सहज, पुदगल अचेत जड़ । जीव अमूरति मूरतीक, पुदगल अंतर वड़ । जवलग न होइ अनुभौ प्रगट, तवलग मिथ्यामति लसे । करतार जीव जड़ करमको, सुवुद्धि विकाश यहु भ्रम नसे ॥ ६ ॥

दोहा.

कर्ता परिणामी द्रव्य कर्मरूप परिणाम ।
क्रिया पर्यायकी फेरनी, वस्तु एक त्रय नाम ॥ ७ ॥
कर्त्ता कर्म क्रिया करे, क्रिया कर्म कर्तार ।
नाम भेद वहुविधि भयो, वस्तु एक निर्धार ॥ ८ ॥
एक कर्म कर्त्तव्यता, करे न कर्ता दोय ।
दुधा द्रव्य सत्ता सु तो, एक भाव क्यों होय ॥ ९ ॥

कर्त्ता कर्म और क्रियाको विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

एक परिणामके न करता दरव दोय, दोय परिणाम एक द्रव्य न धरत है ॥ एक करतूति दोय द्रव्य कबहूं न करे, दोय करतूति एक द्रव्य न करत है ॥ जीव पुदगल एक खेत अवगाहि दोउ, अपने अपने रूप कोऊ न टरत है ॥ जड़ परिणामनिको करता है पुदगल, चिदानंद चेतन स्वभाव आचरत है ॥ १० ॥

मिथ्यात्व और सम्यक्त्व स्वरूप वर्णन करे है सवैया ३१ सा.

महा धीट दुःखको वसीठ पर द्रव्यरूप, अंध कूप काहूपै निवार्‍यो नहिं गयो है ॥ ऐसो मिथ्याभावलग्यो जीवके अनादिहीको, याहि अहंवुद्धि लिये नानाभांति भयो है ॥ काहू समै काहूको मिथ्यात अंधकार भेदि, ममता उछेदि शुद्ध भाव परिणयो है ॥ तिनही विवेक धारि बंधको विलास डारि, आतम सकतिसों जगत जीति लियो है ॥ ११ ॥

अव यथा कर्म तथा कर्त्ता एकरूप कथन ॥ सवैया ३१ सा.

शुद्धभाव चेतन अशुद्धभाव चेतन, दुहूंको करतार जीव और नहिं मानिये ॥ कर्मपिंडको विलास वर्ण रस गंध फास, करता दुहूंको पुदगल परवानिये ॥ ताते वरणादि गुण ज्ञानावरणादि कर्म, नाना परकार पुदगल रूप जानिये ॥ समल विमल परिणाम जे जे चेतनके, ते ते सब अलख पुरुष यों बखानिये ॥ १२ ॥

अव ये वातके रहस्यकूं मिथ्यादृष्टी जानेही नहीं है ते ऊपर दृष्टांत कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

जैसे गजराज नाज घासके गरास करि, भक्षण स्वभाव नहीं भिन्न

रस लियो है ॥ जैसे मतवारो नहि जाने सिखरणि स्वाद, जुंगमें मगन कहे गऊ दूध पियो है ॥ तैसे मिथ्यामति जीव ज्ञानरूपी है सदीव, पग्यो पाप पुन्यसों सहज शुन्न हियो है ॥ चेतन अचेतन दुहूकों मिश्र पिंड लखि, एकमेक माने न विवेक कछु कियो है ॥ १३ ॥

मिथ्यात्वी जीव कर्मको कर्ता माने है सो भ्रम है ॥ सवैया २३ सा.

जैसे महा धूपके तपतिमें तिसाये मृग, भरमसें मिथ्याजल पीवनेकों धायो है ॥ जैसें अंधकार मांहि जेवरी निरखि नर, भरमसों डरपि सरप मानि आयो है ॥ अपने स्वभाव जैसे सागर है थिर सदा, पवन संयोगसों उछरि अकुलायो है ॥ तैसे जीव जड़सों अव्यापक सहज रूप, भरमसों करमको करता कहायो है ॥ १४ ॥

सम्यक्त्वी भेदज्ञानते कर्मके कर्त्ताका भ्रम दूर करे है ते ऊपर दृष्टांत ॥ सवैया ३१ सा.

जैसे राजहंसके बदनके सपरसत, देखिये प्रगट न्यारो क्षीर न्यारो नीर है ॥ तैसे समकितीके सुदृष्टिमें सहज रूप, न्यारो जीव न्यारो कर्म न्यारोही शरीर है ॥ जब शुद्ध चेतनके अनुभौ अभ्यासें तब, भासे आप अचल न दूजो और सीर है ॥ पूरव करम उदै आइके दिखाई देइ, करता न होइ तिन्हको तमासगीर है ॥ १५ ॥

॥ अब जीव और पुद्गल एकमेक हो रहे हैं तिसको जुदा कैसे जानना सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

जैसे उषणोदकमें उदक स्वभाव सीत, आगकी उपणता फरस ज्ञान लखिये ॥ जैसे स्वाद व्यंजनमें दीसत विविधरूप, लोणको सुवाद खारो जीभ

ज्ञान चाखिये ॥ तैसे घट पिंडमें विभावता ज्ञानरूप जीव भेद ज्ञानरूप ज्ञानसों परखिये ॥ भरमसों करमको करता है चिदानंद, दरव विचार करतार नाम नखिये ॥ १६ ॥

दोहा.

ज्ञान भाव ज्ञानी करे, अज्ञानीं अज्ञान ।
द्रव्यकर्म पुद्गल करे, यह निश्चै परमाण ॥ १७ ॥
ज्ञान स्वरूपी आतमा, करे ज्ञान नहि और ।
द्रव्यकर्म चेतन करे, यह व्यवहारी दोर ॥ १८ ॥

॥ अव शिष्य प्रश्न—कर्तृत्व कथन ॥ सवैया २३ सा.

पुद्गल कर्म करे नहिं जीव, कही तुम मैं समझी नहि तैसी ॥ कौन करे यहु रूप कहो, अत्र को करता करनी कहु कैसी ॥ आपही आप मिले विछुरे जड़, क्यों करि मो मन संशय ऐसी ॥ शिष्य संदेह निवारण कारण, वात कहे गुरु है कछु जैसी ॥ १९ ॥

दोहा.

पुद्गल परिणामी द्रव्य, सदा परणवे सोय ।
याते पुद्गल कर्मका, पुद्गल कर्ता होय ॥ २० ॥

अव पुनः शिष्य प्रश्नः— ॥ छंद अडिल्ल.

ज्ञानवंतको भोग निर्जरा हेतु है । अज्ञानीको भोग वंध फल देतु है ॥ यह अचरजकी वात हिये नहि आवही । पूछे कोऊ शिष्य गुरू समझावही ॥ २१ ॥

शिष्यका संदेह निवारणेके लिये गुरु यथार्थ
उत्तर कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

ज्यों दान पूजादिक विषय कषायादिक, दुहु कर्म भोग पैं दुहूको एक खेत है ॥ ज्ञानी मूढ करम दीसे एकसे पै परिणाम, परिणाम भेद न्यारो न्यारो फल देत है ॥ ज्ञानवंत करनी करें पै उदासीन रूप, ममता न धरे ताते निर्जराको हेतु है ॥ वह करतूति मूढ करे पै मगनरूप, अंध भयो ममतासों बंध फल लेत है ॥ २२ ॥

अब कुंभारको दृष्टांत देय मूढको कर्तापणा सिद्ध करे है ॥ छप्पै.

ज्यों माटी मांहि कलश, होनेकी शक्ति रहे ध्रुव । दंड चक्र चीवर कुलाल, बाहिज निमित्त हुव । त्यों पुद्गल परमाणु, पुंज वरगणा भेष धरि । ज्ञानावरणादिक स्वरूप, विचरंत विविध परि । बाहिज निमित्त बहि-तरातमा, गहि संशै अज्ञानमति । जगमांहि अहंकृत भावसों, कर्मरूप व्है परिणमति ॥ २३ ॥

अब निश्चयसे जीवकूं अकर्त्ता मानि आत्मानुभवमें रहे है
ताका महात्म कहे है ॥ सवैया २३ सा.

जे न करे नय पक्ष विवाद, धरे न विषाद अलीक न भाखे ॥ जे उदवेग तजे घट अंतर, सीतल भाव निरंतर राखे ॥ जे न गुणी गुण भेद विचारत, आकुलता मनकी सब नाखे । ते जगमें धरि आतम ध्यान, अखं-डित ज्ञान सुधारस चाखे ॥ २४ ॥

अब निश्चयसे अकर्त्तापणा और व्यवहारसे कर्तापणा
स्थापन करि बतावे है ॥ सवैया ३१ सा.

व्यवहार दृष्टिसों विलोकत बंध्योसों दीसे, निहचै निहारत न बांध्यो

यहु किनही ॥ एक पक्ष बंध्यो एक पक्षसों अबंध सदा, दोउ पक्ष अपने अनादि धरे इनही ॥ कोउ कहे समल विमलरूप कोउ कहे, चिदानंद तैसाही वखान्यो जैसे जिनही ॥ बंध्यो माने खुल्यो माने द्वै नयके भेद-जाने, सोई ज्ञानवंत जीव तत्त्व पायो तिनही ॥ २५ ॥

दोऊ नयकूं जानकर समरस भावमें रहे है ताकी प्रशंसा सवैया ३१ सा.

प्रथम नियत नय दूजो व्यवहार नय, दुहूकों फलावत अनंत भेद फले है ॥ ज्यों ज्यों नय फैले त्यों त्यों मनके कल्लोल, फैले, चंचल सुभाव लोकालोकलों उछले है ॥ ऐसी नय कक्ष ताको पक्ष तजि ज्ञानी जीव, समरसि भये एकतासों नहि टले है ॥ महा मोहनासे शुद्धअनुभो अभ्यासे निज, वल परगासि सुखरासी मांहि रले है ॥ २६ ॥

व्यवहार और निश्चय वताय चिदानंदका सत्यस्वरूप कहे है। सवैया ३१.

जैसे काहु वाजीगर चौहटे वजाई ढोल, नानारूप धरिके भगल विद्या ठानी है ॥ तैसे मैं अनादिको मिथ्यात्वकी तरंगनिसों, भरममें धाइ वहु काय निजमानी है ॥ अव ज्ञानकला जागी भरमकी दृष्टि भागी, अपनि पराई सव सोंज पहिचानी है ॥ जाके उदै होत परमाण ऐसी भांति भई, निहचे हमारि ज्योति सोई हम जानी है ॥ २७ ॥

ज्ञाता होय सो आत्मानुभवमें विचार करे है। सवैया ३१ सा.

जैसे महा रतनकी ज्योतिमें लहरि उठे, जलकी तरंग जैसे लीन होय जलमें ॥ तैसे शुद्ध आतम दरव परजाय करि, उपजे विनसे थिर रहे निज थलमें ॥ ऐसो अविकलपी अजलपी आनंद रूपि, अनादि अनंत गहि

लीजे एक पलमें ॥ ताको अनुभव कीजे परम पीयूष पीजे, बंधको विलास-डारि दीजे पुदगलमें ॥ २८ ॥

आत्माका शुद्ध अनुभव है सो परम पदार्थ है ताकी प्रशंसा। सवैया ३१.

द्रव्यार्थिक नय परयायार्थिक नय दोउ, श्रुत ज्ञानरूप श्रुत ज्ञान तो परोख है ॥ शुद्ध परमातमाको अनुभौ प्रगट ताते, अनुभौ विराजमान अनुभौ अदोख है ॥ अनुभौ प्रमाण भगवान् पुरुष पुराण, ज्ञान औ विज्ञानघन महा सुख पोख है ॥ परम पवित्र यो अनंत नाम अनुभौके, अनुभौ विना न कहूं और ठोर मोख है ॥ २९ ॥

अब अनुभव विना संसारमें भ्रमे अर अनुभव होते मोक्ष पावे है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

जैसे एक जल नानारूप दरवानुयोग, भयो वहु भांति पहिचान्यो न परत है ॥ फीरि काल पाई दरवानुयोग दूर होत, अपने सहज नीचे मारग ढरत है ॥ तैसे यह चेतन पदारथ विभावतासों, गति जोनि भेष भव भावरि भरत है ॥ सम्यक् स्वभाव पाइ अनुभौके पंथ धाइ, वंधकी जुगती भानि मुकती करत है ॥ ३० ॥

दोहा—

निशि दिन मिथ्याभाव वहु, धरै मिथ्याती जीव ॥
ताते भावित कर्मको, कर्त्ता कह्यो सदीव ॥ ३१ ॥

अब मूढ मिथ्यात्वी है सो कर्मको कर्त्ता है और ज्ञानी अकर्त्ता है सो कहे है ॥ चौपाई ॥—

करे करम सोई करतारा । जो जाने सो जानन हारा ॥
जो करता नहि जाने सोई । जाने सो करता नहि होई ॥ ३२ ॥

जे ज्ञाता जाननहार है ते अकर्त्ता कैसा होय । सोरठा.

ज्ञान मिथ्यात न एक, नहि रागादिक ज्ञान मही ॥
ज्ञान करम अतिरेक, ज्ञाता सो करता नही ॥ ३३ ॥

मिथ्यात्वी है सो द्रव्यकर्मका कर्त्ता नहि भावकर्मका कर्त्ता है सो कहे है ॥ छप्पै.

करम पिंड अरु रागभाव, मिलि एक होय नहि । दोऊ भिन्न स्वरूप वसहि, दोऊ न जीव महि । करम पिंड पुद्गल, भाव रागादिक मूढ भ्रम । अलख एक पुद्गल अनंत, किम धरहि प्रकृति सम । निज निज विलास जुत जगत महि, जथा सहज परिणमहि तिम । करतार जीव जड करमको, मोह विकल जन कहहि इम ॥ ३४ ॥

॥ अब जीवका सिद्धांत (आत्म प्रभाव कथन) समभावे है ॥ छप्पै.

जीव मिथ्यात् न करे, भाव नहि धरे भरम मल । ज्ञान ज्ञानरस रमे, होइ करमादिक पुदगल । असंख्यात परदेश शकति, झगमगे प्रगट अति । चिद्विलास गंभीर धीर, थिर रहे विमल मति । जबलग प्रबोध घट महि उदित, तबलग अनय न पोखिये । जिम धरमराज वरतंत पुर, जिहि तिहिं नीतिहि देखिये ॥ ३५ ॥

कर्त्ता कर्म क्रिया त्रितीय द्वार समाप्त भयो ॥ ३ ॥

—

अथ पुन्यपाप एकत्व करण चतुर्थद्वार प्रारंभ ॥४॥

कर्त्ता क्रिया कर्मको, प्रगट बखान्यो मूल ।
अब बरनौं अधिकार यह, पापपुन्य समतूल ॥ १ ॥

पापपुण्य द्वारविषें प्रथम ज्ञानरूप चंद्रके कलाकूं नमस्कार करे है।कवित्त.

जाके उदै होत घट अंतर, विनसे मोह महा तम रोक ॥ शुभ अर अशुभ करमकी दुविधा, मिटे सहज दीसे इक थोक ॥ जाकी कला होत संपूरण, प्रति भासे सब लोक अलोक ॥ सो प्रतिबोध शशि निरखि, बनारसि सीस नमाइ देत पग धोक ॥ २ ॥

मोहते शुभ अर अशुभ कर्मकी द्विधा दीखे है सो एकरूप दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा.

जैसे काहु चंडाली जुगल पुत्र जने तिन, एका दीयो बामनकूं एक घर राख्यो है ॥ बामन कहायो तिन मद्य मांस त्याग कीनो, चांडाल कहायो तिन मद्यमांस चाख्यो है ॥ तैसे एक वेदनी करमके जुगल पुत्र, एक पाप एक पुन्य नाम भिन्न भाख्यो है ॥ दुहूं माहि दोर धूप दोऊ कर्म बंध रूप, याते ज्ञानवंत कोउ नांहि अभिलाख्यो है ॥ ३ ॥

गुरुने पाप अर पुन्यको समान कह्यो तिस ऊपर शिष्य प्रश्न करे है ॥ चौपाई.

कोउ शिष्य कहे गुरु पाही । पाप पुन्य दोऊ सम नाहीं ॥
कारणरस स्वभाव फल न्यारो । एक अनिष्ट लगे इक प्यारो ॥ ४ ॥

शिष्य पापपुन्यके कारण, रस, स्वभाव, अर फल, जुदे जुदे कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

संकलेश परिणामनिसा पाप बंध होय, विशुद्धसा पुन्य बंध हेतु भेद

मानिये ॥ पापके उदै असाता ताको है कटुक स्वाद, पुन्य उदै साता मिष्ट रस भेद जानिये ॥ पाप संकलेश रूप पुन्य है विशुद्ध रूप, दुहूंको स्वभाव भिन्न भेद यों बखानिये ॥ पापसों कुगति होय पुन्यसों सुगति होय ऐसो फल भेद परतक्ष परमानिये ॥ ५ ॥

अव शिष्यके प्रश्नकूं गुरु उत्तर कहे है पापपुन्य एकत्व करण ॥ सवैया ३१ सा.

पाप वंध पुन्य वंध दुहूमें मुकति नांहि, कटुक मधुर स्वाद पुद्गलको देखिये ॥ संकलेश विशुद्धि सहज दोउ कर्मचाल, कुगति सुगति जग जालमें विसेखिये ॥ कारणादि भेद तोहि सूझत मिथ्या मांहि, ऐसो द्वैत भाव ज्ञान दृष्टिमें न लेखिये ॥ दोउ महा अंध कूप दोउ कर्म वंध रूप, दुहुंको विनाश मोक्ष मारगमें देखिये ॥ ६ ॥

अव मोक्ष मार्गमें पापपुन्यका त्याग कह्या तिस मोक्ष पद्धतीका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

सील तप संयम विरति दान पूजादिक, अथवा असंयम कषाय विषै भोग है ॥ कोउ शुभरूप कोउ अशुभ स्वरूप मूल, वस्तुके विचारत दुविध कर्म रोग है ॥ ऐसी वंध पद्धति बखानी वीतराग देव, आतम धरममें करत त्याग जोग है ॥ भौ जल तरैया रागद्वेषके हरैया महा, मोक्षके करैया एक शुद्ध उपयोग है ॥ ७ ॥

अव अर्धा सवैयामें शिष्य प्रश्न करे अर अर्धा सवैयामें गुरु उत्तर कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

शिष्य कहे स्वामी तुम करनी शुभ अशुभ, कीनी है निषेध मेरे संश मन मांहि है ॥ मोक्षके सधैया ज्ञाता देश विरती मुनीश, तिनकी अवस्था तो निरावलंब नाहीं है ॥ कहे गुरु करमको नाश अनुभौ अभ्यास, ऐसो

अवलंब उनहीको उन मांहि है ॥ निरुपांधि आतम समाधि सोई शिव रूप, और दौर धूप पुद्गल परछांही है ॥ ८ ॥

अब शुभक्रियामें बंध तथा मोक्ष ये दोनूं है सो स्वरूप बतावे है ॥ सवैया २३ सा.

मोक्ष स्वरूप सदा चिन्मूरति, बंध मही करतूति कही है ॥ जावत काल बसे जहँ चेतन, तावत सो रस रीति गही है ॥ आतमको अनुभौ जबलों तबलों, शिवरूप दशा निवही है ॥ अंध भयो करनी जब ठाणत, बंध, विथा तब फैलि रही है ॥ ९ ॥

अब मोक्ष प्रातिका कारण अंतर दृष्टि है सो कहे है ॥ सोरठा.

अंतर दृष्टि लखाव, अर स्वरूपको आचरण ।
ए परमातम भाव, शिव कारण येई सदा ॥ १० ॥

अब बंध होनेका कारण बाह्य दृष्टि है सो कहे है ॥ सोरठा.

कर्म शुभाशुभ दोय, पुद्गलपिंड विभाव मल ।
इनसों मुक्ति न होय, नांही केवल पाइये ॥ ११ ॥

अब ये बात ऊपर शिष्य प्रश्न करे अर गुरु उत्तर कहे है। सवैया ३१ सा.

कोई शिष्य कहे स्वामी अशुभक्रिया अशुद्ध, शुभक्रिया शुद्ध तुम ऐसी क्यों न बरनी ॥ गुरु कहे जबलों क्रियाके परिणाम रहे, तबलो चपल उपयोग जोग धरनी ॥ थिरता न आवे तौलों शुद्ध अनुभौ न होय, याते दोउ क्रिया मोक्ष पंथकी कतरनी ॥ बंधकी करैया दोउ दुहूमें न भली कोउ, बाधक विचारमें निषिद्ध कीनी करनी ॥ १२ ॥

अब ज्ञान मात्र मोक्षमार्ग है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

मुकतिके साधकको बाधक करम सब, आतमा अनादिको करम मांहि लूक्यो है ॥ येतेपरि कहे जो कि पापबुरो पुन्यभलो, सोइ महां मूढ मोक्ष

मारगसों चूक्यो है ॥ सम्यक् स्वभाव लिये हियेमें प्रगट्यो ज्ञान, ऊरध उमंगि चल्यो काहूंपैं न रुक्यो है ॥ आरसीसो उज्जल बनारसी कहत आप, कारण स्वरूप व्हैके कारिजको ढूक्यो है ॥ १३ ॥

अब ज्ञानका अर कर्मका व्योरा कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

जोलों अष्ट कर्मको विनाश नाहि सरवथा, तोलों अंतरातमामें धारा दोई वरनी ॥ एक ज्ञानधारा एक शुभाशुभ कर्मधारा, दुहूकी प्रकृति न्यारी न्यारी न्यारी धरनी ॥ इतनो विशेषजु करम धारा बंध रूप, पराधीन शकति विविध बंध करनी ॥ ज्ञान धारा मोक्षरूप मोक्षकी करनहार, दोषकी हरनहार भौ समुद्र तरनी ॥ १४ ॥

अब मोक्ष प्राप्ति ज्ञान अर क्रिया ते होय ऐसा जो स्याद्वाद है तिनकी प्रशंसा करे है ॥ ३१ सा.

समुझे न ज्ञान कहे करम कियेसों मोक्ष, ऐसे जीव विकल मिथ्यातकी गहलमें ॥ ज्ञान पक्ष गहे कहे आतमा अबंध सदा, वरते सुछंद तेउ डूबे है चहलमें ॥ जथा योग्य करम करे पै ममता न धरे, रहे सावधान ज्ञान ध्यानकी टहलमें ॥ तेई भव सागरके उपर व्है तरे जीव, जिन्हको निवास स्यादवादके महलमें ॥ १५ ॥

अब मूढके क्रियाका तथा विचक्षणके क्रियाका वर्णन करे है ॥ सवैया ३१.

जैसे मतवारो कोउ कहे और करे और, तैसे मूढ प्राणी विपरीतता धरत है ॥ अशुभ करम बंध कारण वखाने माने, मुकतीके हेतु शुभ रीति आचरत है ॥ अंतरसुदृष्टि भई मूढता विसर गई, ज्ञानको उद्योत भ्रम तिमिर हरत है ॥ करणीसों भिन्न रहे आतम स्वरूप गहे, अनुभौ आरंभि रस कौतुक करत है ॥ १६ ॥

पुन्यपाप एकत्व करण चतुर्थद्वार समाप्त भया ॥ ४ ॥

अथ पंचम आश्रवद्वार प्रारंभ ॥ ५

दोहा.

पाप पुन्यकी एकता, वरनी अगम अनूप ।
अब आश्रव अधिकार कछु, कहूं अध्यातम रूप ॥ १ ॥

आश्रव सुभटको नाश करनहार ज्ञान सुभट है तिस ज्ञानकूं नमस्कार करे है ॥ ३१ सा.

जे जे जगवासी जीव थावर जंगम रूप, ते ते निज वस करि राखे वल तोरिके ॥ महा अभिमान ऐसो आश्रव अगाध जोधा, रोपि रण थंभ ठाडो भयो मूछ मोरिके ॥ आयो तिहि थानक अचानक परम धाम, ज्ञान नाम सुभट सवायो वल फेरिके आश्रव पछाऱ्यो रणथंभ तोडि डाऱ्यो ताहि, निरखी वनारसी नमत कर जोरिके ॥ २ ॥

द्रव्यआश्रवका भावआश्रवका अर सम्यक्ज्ञानका लक्षण कहै है ॥ सवैया २३ सा.

दर्वित आश्रव सो कहिये जहिं, पुद्गल जीव प्रदेश गरासै ॥ भावित आश्रव सो कहिये जहिं, राग विमोह विरोध विकासे ॥ सम्यक् पद्धति सो कहिये जहिं, दर्वित भावित आश्रव नासे ॥ ज्ञानकला प्रगटे तिहि स्थानक, अंतर वाहिर और न भासे ॥ ३ ॥

ज्ञाता निराश्रवी है सो कहे है ॥ चौपाई.

जो द्रव्याश्रव रूप न होई । जहां भावाश्रव भाव न कोई ॥
जाकी दशा ज्ञानमय लहिये । सो ज्ञातार निराश्रव कहिये ॥ ४ ॥

ज्ञाताका सामर्थ्य (निराश्रवपणा) कहै है ॥ सवैया ३१ सा.

जेते मन गोचर प्रगट बुद्धि पूरवक, तिन परिणामनकी ममता हरतु है ॥ मनसो अगोचर अबुद्धि पूरवक भाव, तिनके विनाशवेको उद्यम धरतु है ॥ याही भांति पर परणतिको पतन करे, मोक्षको जतन करे भैजल तरतु है ॥ ऐसे ज्ञानवंत ते निराश्रव कहावे सदा, जिन्हको सुजस सुविचक्षण करतु है ॥ ५ ॥

गुरूनें ज्ञानीकूं निराश्रवी कह्या ते ऊपर शिष्य प्रश्न करे है ॥
सवैया २३ सा.

ज्यों जगमें विचरे मतिमंद, स्वछंद सदा वरते बुध तैसे ॥
चंचल चित्त असंजम वैन, शरीर सनेह यथावत जैसे ॥
भोग संजोग परिग्रह संग्रह, मोह विलास करे जहां ऐसे ॥
पूछत शिष्य आचारजकों यह, सम्यक्वंत निराश्रव कैसे ॥ ६ ॥

शिष्यके प्रश्नका गुरु उत्तर कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

पूरव अवस्था जे करम वंध कीने अव, तेई उदै आई नाना भांति रस देत हैं ॥ केई शुभ साता केई अशुभ असाता रूप, दुहूंमें न राग न विरोध समचेत हैं ॥ यथायोग्य क्रियाकरे फलकी न इच्छाधरे, जीवन मुकतिको विरद गहि लेत हैं ॥ यातें ज्ञानवंतको न आश्रव कहत कोउ, मुद्धतासों न्यारे भये शुद्धता समेत हैं ॥ ७ ॥

दोहा.

जो हित भावसु राग है, अहित भाव विरोध ।
भ्रमभाव विमोह है, निर्मल भावसु बोध ॥ ८ ॥
राग विरोध विमोह मल, येई आश्रव मूल ।
येई कर्म बढाइके, करे धरमकी भूल ॥ ९ ॥
जहां न रागादिक दशा सो सम्यक् परिणाम ।
याते सम्यक्वंतको, कह्यो निराश्रव नाम ॥ १० ॥

ज्ञाता निराश्रवपणामें विलास करे है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

जे कोई निकट भव्यरासी जगवासी जीव, मिथ्यामत भेदि ज्ञान भाव परिणये हैं ॥ जिन्हके सुदृष्टीमें न राग द्वेष मोह कहूं, विमल विलोकनिमें तीनों जीति लये हैं ॥ तजि परमाद घट सोधि जे निरोधि जोग, शुद्ध उपयोगकी दशामें मिलि गये हैं ॥ तेई बंध पद्धति विडारि पर संग ज्ञारि, आपमें मगन व्है के आपरूप भये हैं ॥ ११ ॥

अब ज्ञाताके क्षयोपशम भावते तथा उपशम भावते चंचलपणा है सो कहे है ॥ ३१ सा.

जेते जीव पंडित क्षयोपशमी उपशमी, इनकी अवस्था ज्यों लुहारकी संडासी है ॥ खिण आगिमांहि खिण पाणिमांहि तैसे येउ, खिणमें मिथ्यात खिण ज्ञानकला भासी है ॥ जोलों ज्ञान रहे तोलों सिथल चरण मोह, जैसे कीले नागकी शकति गति नासी है ॥ आवत मिथ्यात तब नानारूप बंध करे, जेउ कीले नागकी शकति परगासी है ॥ १२ ॥

दोहा.

यह निचोर या ग्रंथको, यहे परम रस पोख ।
तजे शुद्धनय बंध है, गहे शुद्धनय मोख ॥ १३ ॥

अब जीवके बाह्य विलास अंतर विलास बतावे है ॥ सवैया ३१ सा.

करमके चक्रमें फिरत जगवासी जीव, व्है रह्यो बहिरमुख व्यापत विषमता ॥ अंतर सुमति आई विमल बड़ाई पाई, पुद्गलसों प्रीति टूटी छूंटी माया ममता ॥ शुद्धनै निवास कीनो अनुभौ अभ्यास लीनो, भ्रमभाव छांडि दीनो भीनोचित्त समता ॥ अनादि अनंत अविकलप अचल ऐसो, पद अवलंबि अवलोके राम रमता ॥ १४ ॥

अब आत्माका शुद्धपणा सम्यक्दर्शन है तिसकी प्रशंसा करे है ॥ सवैया ३१ सा.

जाके परकाशमें न दीसे राग द्वेष मोह, आश्रव मिटत नहि बंधको तरस है ॥ तिहुं काल जामें प्रतिबिंबित अनंतरूप, आपहुं अनंत सत्ता ऽनंततें सरस है ॥ भावश्रुत ज्ञान परमाण जो विचारि वस्तु, अनुभौ करे न जहां वाणीको परस है ॥ अतुल अखंड अविचल आविनासी धाम, चिदानंद नाम ऐसो सम्यक् दरस है ॥ १५ ॥

॥ इति पंचम आश्रव द्वार समाप्त भयो ॥ ५ ॥

अथ छट्ठो संवर द्वार प्रारंभ ॥ ६ ॥

दोहा.

आश्रवको अधिकार यह, कह्या जथावत् जेम ।
अब संवर वर्णन करूं, सुनहु भविक धरि प्रेम ॥ १ ॥

अब संवर द्वारके आदिमें ज्ञानकू नमस्कार करे है ॥ ३१ सा.

आतमको अहित अध्यातम रहित ऐसो, आश्रव महातम अखंड अंडवत है ॥ ताको विसतार गिलिवेकों परगट भयो, ब्रह्मंडको विकाश ब्रह्ममंडवत है ॥ जामें सब रूप जो सबमें सब रूपसों पै, सबनिसों अलिप्त आकाश खंडवत है ॥ सोहै ज्ञानभान शुद्ध संवरको भेष धरे, ताकी रुचि रेखको हमारे दंडवत् है ॥ २ ॥

अब ज्ञानसे जड़ और चेतनका भेद समझे तथा संवर है तिस ज्ञानकी महिमा कहे है ॥ २३ सा.

शुद्ध सुछंद अभेद अबाधित, भेद विज्ञान सु तीछन आरा ॥
अंतर भेद स्वभाव विभाव, करे जड़ चेतन रूप दुफारा ॥
सो जिन्हके उरमें उपज्यो, न रुचे तिन्हको परसंग सहारा ॥
आतमको अनुभौ करि ते; हरखे परखे परमातम धारा ॥ ३ ॥

अब सम्यक्तके सामर्थ्यते सम्यग्ज्ञानकी अर आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होय है सो कहे है ॥ २३ सा.

जो कबहूं यह जीव पदारथ, औसर पाय मिथ्यात मिटावे ॥
सम्यक् धार प्रवाह वहे गुण, ज्ञान उदै मुख ऊरध धावे ॥

तो अभिअंतर दर्वित भावित, कर्म कलेश प्रवेश न पावे ॥
आतम साधि अध्यातमके पथ, पूरण व्है परब्रह्म कहावे ॥

॥ अब संवरका कारण सम्यक्त्व है ताते सम्यक्दृष्टिकी महिमा कहे है ॥ २३ सा—

भेदि मिथ्यात्वसु वेदि महा रस, भेद विज्ञान कला जिनि पाई ॥
जो अपनी महिमा अवधारत, त्याग करे उरसों जु पराई ॥
उद्धत रीत वसे जिनिके घट, होत निरंतर ज्योति सवाई ॥
ते मतिमान सुवर्ण समान, लगे तिनकों न शुभाशुभ काई ॥ ५ ॥

अब भेदज्ञान है सो संवरको तथा मोक्षको कारण है ताते भेदज्ञानकी महिमा कहे है ॥ अडिल्ल.

भेदज्ञान संवर निदान निरदोष है। संवर सो निरजरा अनुक्रम मोक्ष है ॥ भेदज्ञान शिव मूल जगत महि मानिये। जदपि हेय है तदपि उपादेय जानिये ॥ ६ ॥

दोहा.

भेदज्ञान तबलौं भलो, जबलौं मुक्ति न होय।
परम ज्योति परगट जहां, तहां विकल्प न कोय ॥ ७ ॥

मुक्तिको उपाय भेदज्ञान है उसकी महिमा कहे है ॥ चौपाई.

भेदज्ञान संवर जिन्ह पायो। सो चेतन शिवरूप कहायो ॥
भेदज्ञान जिन्हके घट नाही। ते जड़ जीव बंधे घट मांही ॥ ८ ॥

दोहा.

भेदज्ञान साबू भयो, समरस निर्मल नीर ।
धोबी अंतर आतमा; धोवे निजगुण चीर ॥ ९ ॥

अब भेदज्ञानकी जो क्रिया (कर्तव्यता) है सो दृष्टांत
ते कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

जैसे रज सोधा रज सोधिके दरव काढे, पावक कनक काढे दाहत उपल को ॥ पंकके गरभमें ज्यो डारिये कुतक फल, नीर करे उज्जल नितोरि डारे मलको ॥ दधिके मथैया मथि काढे जैसे माखनको, राजहंस जैसे दूधपीवे त्यागि जलको ॥ तैसे ज्ञानवंत भेदज्ञानकी शकति साधि, वेदे निज संपत्ति उच्छेदेपर दलको ॥ १० ॥

अब मोक्षका मूल भेदज्ञान है सो कहे है ॥ छप्पै छंद.

प्रगट भेद विज्ञान, आपगुण परगुण जाने । पर परणति परित्याग, शुद्ध अनुभौ तिथि ठाने । करि अनुभौ अभ्यास, सहज संवर परकासे । आश्रव द्वार विरोधि, कर्मघन तिमिर विनासे । क्षय करि विभाव समभाव भजि, निरविकल्प निज पद गहे । निर्मल विशुद्ध शाश्वत सुथिर, परम अतींद्रिय सुखलहे ॥ ११ ॥

॥ इति छठो संवरद्वार समाप्त भयो ॥ ६ ॥

अथ सप्तम निर्जरा द्वार प्रारंभ ॥ ७ ॥

दोहा.

वरणी संवरकीदशा, यथा युक्ति परमाण ।
मुक्ति वितरणी निर्जरा, सुनो भविक धरि कान ॥
जो संवर पद पाइ अनंदे । सो पूरव कृत कर्म निकंदे ॥
जो अफंद व्है बहुरि न फंदे । सो निर्जरा बनारसि बन्दे ॥ १ ॥

अव निर्जराका कारण सम्यक्ज्ञान है तिस ज्ञानकी महिमा कहे है ॥ दोहा, सोरठा.

महिमा सम्यक्ज्ञानकी, अरु विराग बलजोय ॥
क्रिया करत फल भुंजते, कर्मबँध नहि होय ॥ २ ॥
पूर्व उदै संबंध, विषय भोगवे समकिती ॥
करे न नूतन बंध, महिमा ज्ञान विरागकी ॥ ३ ॥

अव सम्यकज्ञानी भोग भोगवे है तोहूं तिसकूं कर्मका कलंक नहि लगे है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

जैसे भूप कौतुक स्वरूप करे नीच कर्म, कौतूकि कहावे तासो कोन कहे रंक है ॥ जेसे व्यभिचारिणी विचारे व्यभिचार वाको, जारहीसों प्रेम भरतासों चित्त वंक है ॥ जैसे धाई बालक चुंघाई करे लालपाल, जाने तांहि औरको जदपि वाके अंक है ॥ तैसे ज्ञानवंत नाना भांति करतूति ठाने, किरियाको भिन्न माने याते निकलंक है ॥ ४ ॥

जैसे निशि वासर कमल रहे पंकहीमें, पंकज कहावे पैं न वाके ढिग पंक है ॥ जैसे मंत्रवादी विषधरसों गहावे गात, मंत्रकी शकति वाके विना विष डंक है ॥ जैसे जीभ गहे चिकनाई रहे रूखे अंग, पानीमें कनक जैसे कायसे अटंक है ॥ तैसे ज्ञानवंत नानाभांति करतूति ठाने, किरियाको भिन्न माने याते निकलंक है ॥ ५ ॥

अब सम्यक्ती है सो ज्ञान अर वैराग्यकूं साधे है सो कहे है। २३ सा.

सम्यकूवंत सदा उर अंतर, ज्ञान विराग उभै गुण धारे ॥
जासु प्रभाव लखे निज लक्षण, जीव अजीव दशा निरवारे ॥
आतमको अनुभौ करि स्थिर, आप तरे अरु औरनि तारे ॥
साधि स्वद्रव्य लहे शिव सर्मसो, कर्म उपाधि व्यथा वमि डारे ॥ ६ ॥

विषयके अरुचि विना चारित्रका वल निष्फल है सो कहे है ॥ सवैया २३ सा.

जो नर सम्यकूवंत कहावत, सम्यकूज्ञान कला नहि जागी ॥
आतम अंग अवंध विचारत, धारत संग कहे हम त्यागी ॥
भेष धरे मुनिराज पटंतर, अंतर मोह महा नल दागी ॥
सून्य हिये करतूति करे परि सो सठ जीव न होय विरागी ॥ ७ ॥

भेदज्ञान विना समस्त क्रिया (चरित्र) असार है सो कहे हैं ॥ सवैया २३ सा.

ग्रंथ रचे चरचे शुभ पंथ, लखे जगमें विवहार सुपत्ता ॥
साधि संतोष अराधि निरंजन, देई सुशीख न लेइ अदत्ता ॥
नंग धरंग फिरे तजि संग, छके सरवंग मुधा रस मत्ता ॥
ए करतूति करे सठ पै, समुझे न अनातम आतम सत्ता ॥ ८ ॥

ध्यान धरे करि इंद्रिय निग्रह, विग्रहसों न गिने जिन नत्ता ॥
त्यागि विभूति विभूति मढे तन, जोग गहे भवभोग विरत्ता ॥
मौन रहे लहि मंद कषाय, सहे वध बंधन होइ न तत्ता ॥
ए करतूति करे सठ पैं, समुझे न अनातम आतम सत्ता ॥ ९ ॥
चौ०—जो विन ज्ञान क्रिया अवगाहे। जो विन क्रिया मोक्षपद चाहे ॥
जो विन मोक्ष कहे मैं सुखिया। सो अजान मूढनिमें मुखिया ॥ १० ॥

गुरु उपदेश करे पण मूढ नहीं माने तिस ऊपर चित्रका दृष्टांत कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

जगवासी जीवनिसों गुरु उपदेश करे, तुम्हें यहां सोवत अनंत काल वीते है ॥ जागो व्है सचेत चित्त समता समेत सुनो, केवल वचन जामें अक्ष रस जीते है ॥ आवो मेरे निकट बताऊं मैं तिंहारे गुण, परम सुरस भरे करमसों रीते है ॥ ऐसे वैन कहे गुरु तोउ ते न धरे उर, मित्र कैसे पुत्र किधो चित्र कैसे चीते है ॥ ११ ॥

दोहा.

ऐतेपर पुनः सद्गुरु, बोले मचन रसाल।
शैन दशा जाग्रत दशा, कहे दुहूंकी चाल ॥ १२ ॥

जीवके शयन दशाका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

काया चित्र शालमें करम परजंक भारि, मायाकी सवारी सेज चादर कलपना ॥ शैन करे चेतन अचेतता नींद लिये, मोहकी मरोर यहै लोचनको ढपना ॥ उदै वल जोर यहै श्वासको शवद घोर, विषै सुख कारीजाकी दोर यहै सपना ॥ ऐसे मूढ दशामें मगन रहे तिहुं काल, धावे भ्रम जालमें न पावे रूप अपनां ॥ १३ ॥

जीवके जाग्रत दशाका स्वरूप कहे हैं ॥ सवैया ३१ सा.

चित्रशाला न्यारी परजंक न्यारी सेज न्यारि, चादरभी न्यारी यहां झूठी मेरी थपना ॥ अतीत अवस्था सनै निद्रा वोहि कोउ पै न विद्यमान पलक न यामें अब छपना ॥ श्वास औ सुपन दोउ निद्राकी अलंग बूझे, सूझे सब अंक लखि आतम दरपना ॥ त्यागि भयो चेतन अचेतनता भाव छोडि, भाते दृष्टि खोलिके संभाले रूप अपना ॥ १४ ॥

दोहा.

इह विधि जे जागे पुरुष, ते शिवरूप सदीव ।
जे सोवहिं संसारमें, ते जगवासी जीव ॥ १५ ॥
जो पद भौपद भय हरे, सो पद सेउ अनूप ।
जिहि पद परसत और पद, लगे आपदा रूप ॥ १६ ॥

संसारपदका भय तथा झूठपणा दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा.

जब जीव सोवे तब समझे सुपन सत्य, वहि झूठ लागे जब जागे नींद खोयके ॥ जागे कहे यह मेरो तन यह मेरी सोज, ताहू झूठ मानत मरण थिति जोइके ॥ जाने निज मरम मरण तब सूझे झूठ, बूझे जब और अवतार रूप होयके ॥ वाही अवतारकी दशामें फिर यहै पेच, याही भांति झूठो जग देखे हम ढोयके ॥ १७ ॥

ज्ञाता कैसी क्रिया करे है सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

पंडित विवेक लहि एकताकी टेक गहि, दुंदुज अवस्थाकी अनेकता हरतु है ॥ मति श्रुति अवधि इत्यादि विकलप मेटि, नीरविकलप ज्ञान मनमें धरतु है ॥ इंद्रिय जनित सुख दुःखसों विमुख व्हैके, परमके रूप व्है

करम निर्जरतु है ॥ सहज समाधि साधि त्यागी परकी उपाधि, आतम आराधि परमातम करतु है ॥ १८ ॥

ज्ञानते परमात्माकी प्राप्ति होय है उस ज्ञानकी प्रशंसा करे है ॥

सैवया ३१ सा.

जाके उर अंतर निरंतर अनंत द्रव्य, भाव भासि रहे पैं स्वभाव न टरत है ॥ निर्मलसों निर्मल सु जीवन प्रगट जाके, घटमें अघट रस कौतुक करत हैं ॥ जाने मति श्रुति औधि मनपर्ये केवलसु, पंचधा तरंगनि उमंगि उछरत है ॥ सो है ज्ञान उदधि उदार महिमा अपार, निराधार एकमैं अनेकता धरत है ॥ १९ ॥

ज्ञान विना मोक्षप्राप्ति नहीं सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

केई क्रूर कष्ट सहे तपसों शरीर दहे, धूम्रपान करे अधोमुख व्हैके फूले हैं ॥ केई महा व्रत गहे क्रियामें मगन रहे, वहे मुनिभार पैं पयार कैसे पूले है ॥ इत्यादिक जीवनिकों सर्वथा मुकति नांहि, फिरे जगमांहि ज्यों वयारके बघूले है ॥ जिन्हके हियेमें ज्ञान तिन्हहीको निरवाण, करमके करतार भरममें भूले है ॥ २० ॥

दोहा.

लीन भयो व्यवहारमैं, उक्ति न उपजे कोय ।
दीन भयो प्रभुपद जपे, मुक्ति कहांते होय ॥ २१ ॥
प्रभु सुमरो पूजा पढ़ो, करो विविध व्यवहार ।
मोक्ष स्वरूपी आतमा, ज्ञानगम्य निरधार ॥ २२ ॥

सवैया २३ सा.

काजबिना न करे जिय उद्यम, लाज विना रण मांहि न झूझे ॥
डील बिना न सधे परमारथ, सील विना सतसों न अरूझे ॥

नेम विना न लहे निहचे पद, प्रेम विना रस रीति न बूझे ॥
ध्यान विना न थंभे मनकी गति, ज्ञान विना शिवपंथ न सूझे ॥ २३ ॥
ज्ञान उदै जिन्हके घट अंतर, ज्योति जगी मति होत न मैली ॥
वाहिज दृष्टि मिटी जिन्हके हिय; आतम ध्यानकला विधि फैली ॥
जे जड़ चेतन भिन्न लखेसों, विवेक लिये परखे गुण थैली ॥
ते जगमें परमारथ जानि, गहे रुचि मानि अध्यातम सैली ॥ २४

दोहा.

बहुविधि क्रिया कलापसों, शिवपद लहे न कोय ।
ज्ञानकला परकाशते, सहज मोक्षपद होय ॥ २५ ॥
ज्ञानकला घटघट वसे, योग युक्तिके पार ।
निजनिज कला उदोत करि, मुक्त होइ संसार ॥ २६ ॥

अनुभवते मोक्ष होय है ॥ कुंडलिया छंद.

अनुभव चिंतामणि रतन, जाके हिय परकास ॥ सो पुनीत शिवपद लहे, दहे चतुर्गति वास ॥ दहे चतुर्गतिवास, आस धरि क्रिया न मंडे । नूतन वंध निरोधि, पूर्वकृत कर्म विहंडे ॥ ताके न गिणु विकार, न गिणु वहु भार न गिणु भव ॥ जाके हिरदे मांहि, रतन चिंतामणि अनुभव॥२७॥

अनुभवी ज्ञानीका सामर्थ्य कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

जिन्हके हियेमें सत्य सूरज उद्योत भयो, फैली मति किरण मिथ्यात तम नष्ट है ॥ जिन्हके सुदृष्टीमें न परचे विषमतासों समतासों प्रीति ममतासों लष्ट पुष्ट है ॥ जिन्हके कटाक्षमें सहज मोक्षपथ सधे, सधन निरोध जाके तनको न कष्ट है ॥ तिन्हके करमकी किल्लोल यह है समाधी, डोले यह जोगासन वोले यह मष्ट है ॥ २८ ॥

सामान्य परिग्रहका और विशेष परिग्रहका स्वरूप ॥ सवैया ३१ सा.

आतम स्वभाव परभावकी न शुद्धि ताकों, जाको मन मगन परिग्रहमें रह्यो है ॥ ऐसो अविवेकको निधान परिग्रह राग, ताको त्याग इहांलैं समुच्चैरूप कह्यो है ॥ अब निज पर भ्रम दूर करिवेको काज, बहुरी सुगुरु उपदेशको उमह्यो है ॥ परिग्रह अरु परिग्रहको विशेष अंग, कहिवेको उद्यम उदार लहलह्यो है ॥ २९ ॥

त्याग जोग परवस्तु सब, यह सामान्य विचार।
विविध वस्तु नाना विरति, यह विशेष विस्तार ॥ ३० ॥

पूरव करम उदै रस भुंजे । ज्ञान मगन ममता न प्रयुंजे ॥
मनमें उदासिनता लहिये । यों बुध परिग्रहवंत न कहिये ॥ ३१ ॥

अब ज्ञानीका अवांछक गुण दिखावे है ॥ सवैया ३१ सा.

जे जे मन वांछित विलास भोग जगतमें, ते ते विनासीक सब राखे न रहत है ॥ और जे जे भोग अभिलाष चित्त परिणाम, ते ते विनासीक धाररूप व्है वहत है ॥ एकता न दुहो मांहि ताते वांछा फूरे नांहि, ऐसे भ्रम कारिजको मूरख चहत है ॥ सतत रहे सचेत परेसों न करे हेत, याते ज्ञानवंतको अवंछक कहत है ॥ ३२ ॥

सवैया ३१ सा.

जैसे फिटकाडि लोद हरडेकि पुट विना, स्वेत वस्त्र डारिये मजीठ रंग नीरमें ॥ भीग्या रहे चिरकाल सर्वथा न होइ लाल, भेदे नहि अंतर सुपेदी रहे चीरमें ॥ तैसे समकितवंत राग द्वेष मोह विन, रहे निशि वासर

परिग्रहकी भीरमें ॥ पूरव करम हरे नूतन न बंध करे, जाचे न जगत सुख राचे न शरीरमें ॥ ३३ ॥

सवैया ३१ सा.

जैसे काहू देशको बसैया बलवंत नर, जंगलमें जाइ मधु छत्ताकों गहत है ॥ वाकों लपटाय चहुं ओर मधु मच्छिका पैं, कंवलकी ओटसों अडंकित रहत है ॥ तैसे समकिती शिव सत्ताको स्वरूप साधे, उदैके उपाधीको समाधिसी कहत है ॥ पहिरे सहजको सनाह मनमें उच्छाह, ठाने सुख राह उदवेग न लहत है ॥ ३४ ॥

दोहा.

ज्ञानी ज्ञान मगन रहे, रागादिक मल खोय ॥
चित उदास करणी करे, कर्मबंध नहिं होय ॥ ३५ ॥
मोह महातम मल हरे, धरे सुमति परकास ।
मुक्ति पंथ परगट करे, दीपक ज्ञान विलास ॥ ३६ ॥

अब ज्ञानरूप दीपकका स्वरूप कहै है॥ सवैया ३१ सा.

जामें धूमको न लेश वातको न परवेश, करम पतंगनिको नाश करे पलमें ॥ दशाकों न भोग न सनेहको संयोग जामें, मोह अंधकारको वियोग जाके थलमें ॥ जामें न तताई नहि राग रंकताई रंच, लह लहे समता समाधि जोग जलमें ॥ ऐसे ज्ञान दीपकी सिखा जगी अभंगरूप, निराधार फूरि पै दूरी है पुदगलमें ॥ ३७ ॥

शंखको दृष्टांत देकर ज्ञानकी स्वच्छता दिखावे है॥ सवैया ३१ सा.

जैसो जो दरव तामें तैसाही स्वभाव सधे, कोउ द्रव्य काहूको स्वभाव

न गहत है ॥ जैसे शंख उज्जल विविध वर्ण माटी भखे, माटीसा न दीसे नित उज्जल रहत है ॥ तैसे ज्ञानवंत नाना भोग परिग्रह जोग, करत विलास न अज्ञानता लहत है। ज्ञानकला दूनी होय द्वंददशा सूनी होय, ऊनि होय भव थिती बनारसी कहत है ॥ ३८ ॥

अब सद्गुरु मोक्षका उपदेश करे है ॥ सवैया ३१ सा.

जोलों ज्ञानको उद्योत तोलों नहि बंध होत, वरते मिथ्यात्व तव नाना बंध होहि है ॥ ऐसो भेद सुनके लग्यो तूं विषय भोगनसूं, जोगनीसुं उद्यमकी रीति तैं विछोहि है ॥ सुनो भैया संत तूं कहे मैं समकितवंत, यहू तो एकंत परमेश्वरका द्रोही है ॥ विषैसुं विमुख होहि अनुभौ दशा हरोहि मोक्ष सुख ढोहि तोहि ऐसी मति सोही है ॥ ३९ ॥

चौपाई ॥ दोहा.

ज्ञानकला जिसके घटजागी । ते जगमांहि सहज वैरागी ॥
ज्ञानी मगन विषै सुखमांहीं । यह विपरीत संभवे नाहीं ॥ ४० ॥

ज्ञानशक्ति वैराग्य बल, शिव साधे समकाल।
ज्यों लोचन न्यारे रहे, निरखे दोऊ ताल ॥ ४१ ॥

मूढ कर्मको कर्ता होवे । फल अभिलाष धरे फल जोवे ॥
ज्ञानी क्रिया करे फल सूनी । लगे न लेप निर्जरा दूनी ॥ ४२ ॥

बंधे कर्मसों मूढ ज्यों, पाट कीट तम पेम ।
खुले कर्मसों समकिती, गोरख धंदा जेम ॥ ४३ ॥

ज्ञानी है सो कर्मका कर्ता नहीं है सो कहै ॥ सवैया २३ सा.

जे निज पूरव कर्म उदै सुख, भुंजत भोग उदास रहेंगे ॥
जे दुखमें न विलाप करें, निर वैर हिये तन ताप सहेंगे ॥

है जिनके दृढ़ आतम ज्ञान, क्रिया करिके फलको न चहेंगे ॥
ते सु विचक्षण ज्ञायक है, तिनको करता हमतो न कहेंगे ॥ ४४ ॥

ज्ञानीका आचार विचार कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

जिन्हके सुदृष्टीमें अनिष्ट इष्ट दोउ सम, जिन्हको आचार सु विचार शुभ ध्यान है ॥ स्वारथको त्यागि जे लगे है परमारथको, जिन्हके वनिजमें न नफा है न ज्यान है ॥ जिन्हके समझमें शरीर ऐसो मानीयत, धानकीसो छीलक कृपाणकोसो म्यान है ॥ पारखी पदारथके साखी भ्रम भारथके, तेई साधु तिनहीको यथारथ ज्ञान है ॥ ४५ ॥

ज्ञानीका निर्भयपणा वर्णन करे है ॥ सवैया ३१ सा.

जमकोसो भ्राता दुखदाता है असाता कर्म, ताके उदै मूरख न साहस गहत है ॥ सुरगनिवासी भूमिवासी औ पतालवासी, सबहीको तन मन कंपत रहत है । ऊरको उजारो न्यारो देखिये सपत भैसे, डोलत निशंक भयो आनंद लहत है ॥ सहज सुवीर जाको सास्वत शरीर ऐसो, ज्ञानी जीव आरज आचारज कहत है ॥ ४६ ॥

दोहा.

इहभव भय परलोक भय, मरण वेदना जात ।
अनरक्षा अनगुप्त भय, अकस्मात भय सात ॥४७॥

॥ अब सात भयके जुदेजुदे स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा—

दशधा परिग्रह वियोग चिंता इह भव, दुर्गति गमन भय परलोक मानिये ॥ प्राणनिको हरण मरण मै कहावै सोइ, रोगादिक कष्ट यह वेदना वखानिये ॥ रक्षक हमारो कोउ नाहीं अनरक्षा भय, चोर भय

विचार अनगुप्त मन आनिये ॥ अनचिंत्यो अबहि अचानक कहांधे होय, ऐसो भय अकस्मात जगतमें जानिये ॥ ४८ ॥

इसभवके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे हैं ॥ छप्पै छंद.

नख शिख मित परमाण, ज्ञान अवगाह निरक्षत । आतम अंग अभंग संग पर धन इम अक्षत । छिन भंगुर संसार विभव, परिवार भार जसु । जहां उतपति तहां प्रलय, जासु संयोग वियोग तसु । परिग्रह प्रपंच परगट परखि, इहभव भय उपजे न चित । ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ४९ ॥

परभवके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है ॥ छप्पै छंद.

ज्ञानचक्र मम लोक, जासु अवलोक मोक्ष सुख । इतर लोक मम नांहि नांहि, जिस मांहि दोष दुख । पुन्य सुगति दातार, पाप दुर्गति दुख दायक । दोऊ खंडित खानि मैं, अखंडित शिव नायक । इहविधि विचार परलोक भय, नहि व्यापत वरते सुखित । ज्ञानी निशंक निकलंक निज ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ५० ॥

मरणके भय निवारणकूं (उपाय) कहे है ॥ छप्पै छंद.

फरस जीभ नाशिका, नयन अरु श्रवण अक्ष इति । मन वच बल तीन, स्वास उस्वास आयु थिति । ये दश प्राण विनाश, ताहि जग मरण कहीजे । ज्ञान प्राण संयुक्त, जीव तिहुं काल न छीजे । यह चित करत नहि मरण भय, नय प्रमाण जिनवर कथित । ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित ॥ ५१ ॥

वेदनाके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है ॥ छप्पै छंद.

वेदनहारो जीव, जांहि वेदंत सोउ जिय, । यह वेदना अभंग, सो तो

मम अंग नांहि विय। करम वेदना द्विविध, एक सुखमय द्वतीय दुख। दोऊ मोह विकार, पुद्गलाकार बहिर्मुख। जब यह विवेक मनमें धरत, तब न वेदना भय विदित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित॥ ९२॥

अनरक्षाके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कैहे है॥ छप्पै छंद.

जो स्ववस्तु सत्ता त्वरूप, जगमांहि त्रिकाल गत। तास विनाश न होय, सहज निश्चय प्रमाण मत। सो मम आतम दरव, सरवथा नहि सहाय धर। तिहि कारण रक्षक न होय भक्षक न कोय पर। जब यह प्रकार निरधार किय, तब अनरक्षा भय नसित। ज्ञानीं निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित॥ ९३॥

चोरभय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है॥ ६॥ छप्पै छंद.

परम रूप परतच्छ, जासु लच्छन चित मंडित। पर परवेश तहँ नांहि, माहि महिअगम अखंडित। सो मम रूप अनूप, अकृत अनमित अटूट धन। तांहि चोर किम गहे, ठोर नहिं लहे और जन। चितवंत एम धरि ध्यान जब, तब अगुप्त भय उपशमित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित॥ ९४॥

अकस्मातके भय निवारणकूं मंत्र (उपाय) कहे है॥ छप्पै छंद.

शुद्ध बुद्ध अविरुद्ध, सहज सुसमृद्ध सिद्ध सम। अलख अनादि अनंत, अतुल अविचल स्वरूप मम। चिदविलास परकाश, वीत विकलप सुख थानक। जहां दुविधा नहि कोइ, होइ तहां कछु न अचानक। जब यह विचार उपजंत तब, अकस्मात भय नहि उदित। ज्ञानी निशंक निकलंक निज, ज्ञानरूप निरखंत नित॥ ९५॥

निःशंकितादि अष्टांगसम्यक्तीकी महिमा कहे है ॥ छप्पै छंद.

जो परगुण त्यागंत, शुद्ध निज गुण गहंत ध्रुव । विमल ज्ञान अंकुरा, जास घटमांहि प्रकाश हुव । जो पूरव कृतकर्म, निर्जरा धारि वहावत । जो नव बंध निरोधि, मोक्ष मारग मुख धावत । निःशंकितादि जस अष्ट गुण, अष्ट कर्म अरि संहरत । सो पुरुष विचक्षण तासु पद, बनारसी वंदन करत ॥ ९६ ॥

निःशंकितादि अष्ट अंगके (गुणके) नाम कहे है ॥ सोरठा.

प्रथम निसंशै जानि, द्वितीय अवांछित परिणमन ।
तृतीय अंग अगिलान, निर्मल दृष्टि चतुर्थ गुण ॥९७॥
पंच अकथ परपोष, थिरी करण छट्ठम सहज ।
सप्तम वत्सल पोष, अष्टम अंग प्रभावना ॥ ९८ ॥

सम्यक्तके अष्ट अंगका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

धर्ममें न संशै शुभकर्म फलकी न इच्छा, अशुभकों देखि न गिलानि आणे चित्तमें ॥ साचि दृष्टि राखे काहू प्राणीको न दोष भाखे, चंचलता भानि थीति ठाणे बोध वित्तमें ॥ प्यार निज रूपसों उच्छाहकी तरंग उठे, एइ आठो अंग जब जागे समकितमें ॥ ताहि समकितकों धरैसो समकितवंत, वेहि मोक्ष पावे वो न आवे फिर इतमें ॥ ९९ ॥

अष्टांगसम्यक्तीके चैतन्यका निर्जरारूप नाटक बतावे है॥ सवैया ३१ सा.

पूर्व बंध नासे सो तो संगीत कला प्रकासे, नव बंध रोधि ताल तोरत उछरिके ॥ निशंकित आदि अष्ट अंग संग सखा जोरि, समता अलाप चारि करे स्वर भरिके ॥ निरजरा नाद गाजे ध्यान मिरदंग वाजे, छक्यो

महानंदमें समाधि रीछी करिके ॥ सत्ता रंगभूमिमें मुकत भयो तिहूं काल, नाचे शुद्धदृष्टि नट ज्ञान स्वांग धरिके ॥ ६० ॥

कही निर्जराकी कथा, शिवपथ साधन हार ।
अब कछु बंध प्रबंधको, कहूं अल्प व्यहार ॥ ६१ ॥

सम्यक्ती [भेदज्ञानी] कूं नमस्कार करे है ॥ सवैया ३१ सा.

मोह मद पाइ जिन्हे संसारी विकल कीने, याहीते अजानवान विरद वहत है ॥ ऐसो बंधवीर विकराल महा जाल सम, ज्ञान मंद करे चंद राहु ज्यों गहत है ॥ ताको बल भंजिवेकों घटमें प्रगट भयो, उद्धत उदार जाको उद्दिम महत है ॥ सो है समकित सूर आनंद अंकूर ताहि, निरखि बनारसी नमोनमो कहत है ॥ १ ॥

ज्ञानचेतनाका अर कर्मचेतनाका वर्णन ॥ सवैया ३१ सा.

जहां परमातम कलाको परकाश तहां, धरम धरामें सत्य सूरजकी धूप है ॥ जहां शुभ अशुभ करमको गढास तहां, मोहके विलासमें महा अंधेर कूप है ॥ फेली फिरे घटासी छटासी घन घटा बीच, चेतनकी चेतना दुहूंधा गुपचुप है ॥ बुद्धीसों न गही जाय वैनसों न कही जाय, पानीकी तरंग जैसे पानीमें गुडूप है ॥ २ ॥

कर्मबंधका कारण रागादिक अशुद्ध उपयोग है ॥ सवैया ३१ सा.

कर्मजाल वर्गणासों जगमें न बंधै जीव, बंधे न कदापि मन वच काय जोगसों ॥ चेतन अचेतनकी हिंसासों न बंधे जीव, बंधे न अलख पंच विषै विष रोगसों ॥ कर्मसों अबंध सिद्ध जोगसों अबंध जिन, हिंसासों अबंध साधु ज्ञाता विषै भोगसों ॥ इत्यादिक वस्तुके मिलापसों न बंधे जीव, बंधे एक रागादि अशुद्ध उपयोगसों ॥ ३ ॥

कर्मबंधका कारण अशुद्ध उपयोग है ॥ सवैया ३१ सा.

कर्मजाल वर्गणाको वास लोकाकाश मांहि, मन वच कायको निवास गति आयुमें ॥ चेतन अचेतनकी हिंसा वसे पुद्गलमें, विषै भोग वरते उदैके उरझायमें ॥ रागादिक शुद्धता अशुद्धता है अलखकी, यहै उपादान हेतु बंधके वढावमें ॥ याहीते विचक्षण अबंध कह्यो तिहूं काल, राग द्वेष मोहनांहि सम्यक् स्वभावमें ॥ ४ ॥

सवैया ३१ सा.

कर्मजाल जोग हिंसा भोगसों न बंधे है, तथापि ज्ञाता उद्यमी वखान्यो जिन वनमें ॥ ज्ञानदृष्टि देत विषै भोगनिसों हेत दोऊ, क्रिया एक खेत योंतो बने नांहि जैनमें ॥ उदै वल उद्यम गहै पै फलको न चहै, निरदै दशा न होइ हिरदेके नैनमें ॥ आलस निरुद्यमकी भूमिका मिथ्यांत मांहि, जहां न संभारे जीव मोह नींद सैनमें ॥ ५ ॥

कर्म उदयके वलका वर्णन कहे है ॥

दोहा.

जब जाको जैसे उदै, तब सो है तिहि थान ।
शक्ति मरोरी जीवकी, उदै महा बलवान ॥ ६ ॥

हाथीका अर मच्छका दृष्टांत देके कर्मका उदैवल कहे हैं ॥

जैसे गजराज पर्‍यो कर्दमके कुंडवीच, उद्दिम अरूढे पै न छूटे दुःख दंदसों ॥ जैसे लोह कंटककी कोरसों उरझ्यो मीन, चेतन असाता लहे साता लहे संदसों ॥ जैसे महाताप सिरवाहिसो गरास्यो नर, तके निज काज उठिशके न सु छंदसों ॥ तैसे ज्ञानवंत सब जाने न बसाय कछू, बंध्यो फिरे पूरव करम फल फंदसों ॥ ७ ॥

आलसीका अर उद्यमीका स्वरूप कहे है ॥ चौपाई.

जो जिय मोह नींदमें सोवे । ते आलसी निरुद्यमी होवे ॥ दृष्टि खोलि जे जगे प्रवीना । तिनि आलस तजि उद्यम कीना ॥ ८ ॥

आलसीकी अर उद्यमीकी क्रिया कहे है ॥ ३१ सा.

काच बांधे शिरसों सुमणि बांधे पायनीसों, जाने न गंवार कैसा मणि कैसा कांच है ॥ योंही मूढ झूठमें मगन झूठहीकों दोरे, झूठ बात माने पै न जाने कहां सांच है ॥ मणिको परखि जाने जोहरी जगत मांहि, सांचकी समझ ज्ञान लोचनकी जांच है ॥ जहांको जु वासी सो तो तहांको परम जाने जाको जैसो स्वांग ताको तैसे रूप नाच है ॥ ९ ॥

दोहा.

बंध बढावे बंध व्है, ते आलसी अजान ।
मुक्त हेतु करणी करे, ते नर उद्यम वान ॥ १० ॥

जबलग ज्ञान है तबलग वैराग्य है ॥

जबलग जीव शुद्ध वस्तुकों विचारे ध्यावे, तबलग भोगसों उदासी सरवंग है ॥ भोगमें मगन तब ज्ञानकी जगन नांहि, भोग अभिलाषकी दशा मिथ्यात अंग है ॥ ताते विषै भोगमें मगनासों मिथ्याति जीव, भोग सों उदासिसों समकिति अभंग है ॥ ऐसे जानि भोगासों उदासि व्है सुगति साधे, यह मन चंगतो कठोठी मांहि गंग है ॥ ११ ॥

मुक्तिके साधनार्थ चार पुरुषार्थ कहे हैं ॥ दोहा.

धर्म अर्थ अरु काम शिव, पुरुषारथ चतुरंग ।
कुधी कल्पना गहि रहे, सुधी गहे सरवंग ॥ १२ ॥

चार पुरुषार्थ ऊपर ज्ञानीका अर अज्ञानीका विचार कहे है॥

सवैया ३१ सा.

कुलको विचार ताहि मूरख धरम कहे, पंडित धरम कहे वस्तुके स्वभावकों ॥ खेहको खजानो ताहि अज्ञानी अरथ कहे, ज्ञानी कहे अरथ दरव दरसावकों ॥ दंपत्तिको भोग ताहि दुरबुद्धि काम कहे सुधी काम कहे अभिलाप चित्त चावकों ॥ इंद्रलोक थानको अजान लोक कहे मोक्ष, सुधि मोक्ष कहे एक बंधके अभावकों ॥ १३ ॥

आत्मरूप साधनके चार पुरुषार्थ कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

धरमको साधन जो वस्तुको स्वभाव साधे अरथको साधन विलक्ष द्रव्य षटमें ॥ यहै काम साधन जो संग्रहे निराशपद, सहज स्वरूप मोक्ष शुद्धता प्रगटमें ॥ अंतर सुदृष्टिसों निरंतर विलोके बुध, धरम अरथ काम मोक्ष निज घटमें ॥ साधन आराधनकी सोज रहे जाके संग, भूल्यो फिरे मूरख मिथ्यातकी अलटमें ॥ १४ ॥

वस्तुका सत्य स्वरूप अर मूढका विचार ॥ सवैया ३१ सा.

तिहूं लोक मांहि तिहूं काल सब जीवनिको, पूरव करम उदै आय रस देत है ॥ कोऊ दीरघायु धरे कोऊ अल्प आयु मरे, कोऊ दुखी कोऊ सुखी कोऊ समचेत है ॥ या ही मैं जिवाऊ याहि मारूं याहि सुखी करूं, याहि दुखी करूं ऐसे मूढ मान लेत है॥ याहि अहं बुद्धिसों न विनसे भरम भूल, यहै मिथ्या धरम करम बंध हेत है ॥ १५ ॥

जहालों जगतके निवासी जीव जगतमें, सबे असहाय कोउ काहुको न धनी है ॥ जैसे जैसे पूरव करम सत्ता बांधि जिन्हे, तैसे तैसे उदैमें अवस्था

आइ वनी है ॥ एतेपरी जो कोऊ कहे कि मैं जिवाऊं मारूं, इत्यादि अनेक विकलप बात घनी है ॥ सोतो अहंबुद्धिसों विकल भयो तिहुं काल, डाले निज आतम शकति तिन्ह हनी है ॥ १६ ॥

उत्तम मध्यम अधम अधमाधम इन जीवके स्वभाव कहे है ।

॥ सवैया ३१ सा.

उत्तम पुरुषकी दशा ज्यौं किसमिस द्राख, वाहिर अभीतर विरागी मृदु अंग है ॥ मध्यम पुरुष नालियर कीसी भांति लिये, वाहिज कठिण हिए कोमल तरंग है ॥ अधम पुरुष बदरी फल समान जाके, वाहिरसों दीखे नरमाई दिल संग है ॥ अधमसों अधम पुरुप पूंगी फल सम, अंतरंग बाहिर कठोर सरवंग है ॥ १७ ॥

॥ उत्तम मनुष्यका स्वभाव कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

कीचसों कनक जाके नीचसों नरेश पद, मीचसी मित्ताइ गुरुवाई जाके गारसी ॥ जहरसी जोग जाति कहरसी करामती, हहरसी हंसे पुद्गल छवि छारसी ॥ जालसों जग विलास भालसों भुवन वास, कालसों कुटुंब काज लोक लाज लारसी ॥ सीठसों सुजस जाने वीठसों वखत माने, ऐसी जाकी रीति ताहि बंदत बनारसी ॥ १८ ॥

मध्यम मनुष्यका स्वभाव कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

जैसे कोऊ सुभट स्वभाव ठग मूरखाई, चेरा भयो ठगनके धेरामें रहत है ॥ ठगोरि उतर गई तबै ताहि शुधि भई, पन्यो परवस नाना संकट सहत है ॥ तैसेहि अनादिको मिथ्याति जीव जगतमें, डोले आठो जाम विसराम न गहत है ॥ ज्ञानकला भासी तब अंतर उदासी भयो, पै उदय व्याधिसों समाधि न लहत है ॥ १९ ॥

अधम मनुष्यका स्वभाव कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

जैसे रंक पुरुषके भावे कानी कौड़ी धन, उलुवाके भावे जैसे संझा ही विहान है ॥ कूकरके भावे ज्यों पिंडोर जिरवानी मठा, सूकरके भावे ज्यों पुरीष पकवान है ॥ वायसके भावे जैसे नींबकी निंबोरी द्राख, बालकके भावे दंत कथा ज्यों पुरान है ॥ हिंसक कें भावे जैसे हिंसामें धरम तैसे, मूरखके भावे शुभ बंध निरवान है ॥ २० ॥

अधमाधम मनुष्यका स्वभाव कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

कुंजरको देखि जैसे रोष करि भुंके स्वान, रोष करे निर्धन विलोकि धनवंतकों ॥ रैनके जगैय्याकों विलोकि चोर रोष करे, मिथ्यामति रोष करे सुनत सिद्धांतकों ॥ हंसकों विलोकि जैसे काग मन रोष करे, अभिमानि रोष करे देखत महंतको ॥ सुकविकों देखि ज्यों कुकवि मन रोष करे, त्योंही दुरजन रोष करे देखि २ संतकों ॥ २१ ॥

सरलकों सठ कहे वकतको धीठ कहे, विनै करे तासों करे धनको आधीन है ॥ क्षमीकों निवल कहें दमीकों अदाति कहे, मधुर वचन बोले तासों कहे दीन है ॥ धरमीकों दंभि निसप्रहीकों गुमानी कहे, तृषणा घटावे तासों कहे भाग्यहीन है ॥ जहां साधुगुण देखे तिनकों लगावे दोष; ऐसो कछु दुर्जनको हिरदो मलीन है ॥ २२ ॥

मिथ्याद्दष्टीके अहंबुद्धीका वर्णन करे है ॥ चौपई ॥ दोहा.

मैं कहता मैं कीन्ही कैसी । अब यों करो कहे जो ऐसी ॥
ए विपरीत भाव है जामें । सो वरते मिथ्यात्व दशामें ॥ २३ ॥

अहंबुद्धि मिथ्यादशा, धुरे सो मिथ्यावंत ॥
विकल भयो संसारमें; करें विलाप अनंत ॥ २४ ॥

सवैया ३१ सा ॥

रविके उदोत अस्त होत दिन दिन प्रति, अंजुलीके जीवन ज्यों जीवन घटत है ॥ कालके ग्रसत छिन छिन होत छिन तन, आरेके चलत मानो काठ ज्यों कटत है ॥ एतेपरि मूरख न खोजे परमारथको, स्वारथके हेतु भ्रम भारत ठटत है ॥ लग्यो फिरे लोकनिसों पग्योपरे जोगनिसों विषैरस भोगनिसों नेक न हटत है ॥ २५ ॥

मृगजलका अर अंधका दृष्टांत देके संसारीमूढका भ्रम दिखावे है ॥ ३१ सा.

जैसे मृग मत्त वृषादित्यकी तपति मांहि, तृषावंत मृषाजल कारण अटत है ॥ तैसे भववासी मायाहीसों हित मानिमानि, ठानि २ भ्रम भूमि नाटक नटत है ॥ आगेको ढुकत धाइ पाछे वछारा चवाइ, जैसे द्रगहीन नर जेवरी वटत है ॥ तैसे मूढ चेतन सुकृत करतूति करे, रोवत हसत फल खोवत खटत हैं ॥ २६ ॥

मूढजीव कर्मबंधसे कैसे निकसे नहीं सो लोटण कबूतरका दृष्टांत देके कहे है ॥ ३१ सा.

लिये दृढ पेच फिरे लोटण कबूतरसों, उलटो अनादिको न कहूं सुलटत है ॥ जाको फल दुःख ताहि सातासों कहत सुख, सहत लपेटि असि धारासी चटत है ॥ ऐसे मूढ जन निज संपत्ति न लखे क्योंहि, योंही मेरी २ निशि वासर रटत है ॥ याहि ममतासों परमारथ विनसि जाइ, कांजिको फरस पाय दूध ज्यों फटत है ॥ २७ ॥

नाकका अर काकका दृष्टांत देके मूढके अहंबुद्धिका स्वरूप कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

रूपकी न झांक हिये करमको डांक पिये, ज्ञान दबि रह्यो मिरगांक जैसे घनमें ॥ लोचनकी ढांकसों न मानें सद्गुरु हांक, डोले मूढ रंकसों निशंक तिहूं पनमें ॥ टांक एक मांसकी डलीसी तामें तीन फांक, तीन कोसो अंक लिखि राख्यो काहू तनमें ॥ तासों कहे नांक ताके राखवेको करे कांक, वांकसों खडग बांधि बांधि धरे मनमें ॥ २८ ॥

कुत्तेका दृष्टांत देके मूढका विषयमें मग्नपणा दिखावे हैं ॥
सवैया ३१ सा.

जैसे कोऊ कूकर क्षुधित सूके हाड़ चावे, हाड़नकी कोर चहुंओर चुभे मुखमें ॥ गाल तालु रसनासों मुखनिको मांस फाटे, चाटे निज रुधिर मगन स्वाद सुखमें ॥ तैसे मूढ विषयी पुरुष रति रीत ठाणे, तामें चित्त साने हित माने खेद दुःखमें ॥ देखे परतक्ष वल हानि मल मूत खानि, गहे न गिलानि पगि रहे राग ऊखमें ॥ २९ ॥

जिसकूं मोहकी विकलता नहीं ते साधु है सो कहे हैं ॥
छंद अडिल्ल.

सदा मोहसों भिन्न, सहज चेतन कह्यो । मोह विकलता मानि मिथ्यात्वी हो रह्यो ॥ करे विकल्प अनंत, अहंमति धारिके । सो मुनि जो थिर होइ, ममत्व निवारिके ॥ ३० ॥

सम्यक्ती आत्मस्वरूपमें कैसे स्थिर होय है ॥ सवैया ३१ सा.

असंख्यात लोक परमान जे मिथ्यात्व भाव, तेई व्यवहार भाव केवली उकत है ॥ जिन्हके मिथ्यात्व गयो सम्यक दरस भयो, ते नियत लीन

व्यवहारसों मुकत हैं ॥ निरविकलप निरुपाधि आतम समाधि, साधि जे सुगुण मोक्ष पंथकों ढुकत है ॥ तेइ जीव परम दशामें थिर रूप व्हैके, धरममें धुके न करमसो रुकत है ॥ ३१ ॥

शिष्य कर्मबंधका कारण पूछे है ॥ कवित्त.

जे जे मोह कर्मकी परणति, बंध निदान कही तुम सव्व ॥ संतत भिन्न शुद्ध चेतनसों, तिन्हको मूल हेतू कहु अव्व ॥ कै यह सहज जीवको कौतुक, कै निमित्त है पुद्गल द्रव्य ॥ सीस नवाइ शिष्य इम पूछत, कहे सुगुरु उत्तम सुनि भव्व ॥ ३२ ॥

कर्मबंधका कारण सद्गुरु कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

जैसे नाना वरण पुरी वनाइ दीजे हेठ, उज्जल विमल मणि सूरज करांति है ॥ उज्जलता भासे जव वस्तुको विचार कीजे, पुरीकी झलकसों वरण भांति भांति है ॥ तैसे जीव दरवको पुद्गल निमित्तरूप, ताकी ममतासों मोह मदिराकी भांति है ॥ भेदज्ञान दृष्टिसों स्वभाव साधि लीजे तहां, साची शुद्ध चेतना अवाचि सुखशांति है ॥ ३३ ॥

वस्तुके संगतसे स्वभावमें फेर पड़े है ॥ सवैया ३१ सा.

जैसे महि मंडलमें नदीको प्रवाह एक, ताहीमें अनेक भांति नीरकी ढरणि है ॥ पाथरको जोर तहां धारकी मरोर होत, कांकरकी खानि तहां झागकी झरनि है ॥ पौनकी झकोर तहां चंचल तरंग उठे, भूमिकी निचान तहां भोरकी परनि है ॥ ऐसे एक आतमा अनंत रस पुद्गल, दुहुके संयोगमें विभावकी भरनि है ॥ ३४ ॥

दोहा.

चेतन लक्षण आतमा, जड़ लक्षण तन जाल ।
तनकी ममता त्यागिके, लीजे चेतन चाल ॥ ३५ ॥

आत्माकी शुद्ध चाल कहे है ॥ सवैया २३ सा.

जो जगकी करणी सब ठानत, जो जग जानत जोवत जोई ॥
देह प्रमाण पैं देहसुं दूसरो, देह अचेतन चेतन सोई ॥
देह धरे प्रभु देहसुं भिन्न, रहे परछन्न लखे नहिं कोई ॥
लक्षण वेदि विचक्षण बूझत, अक्षनसों परतक्ष न होई ॥ ३६ ॥

देहकी चाल कहे है ॥ सवैया २३ सा.

देह अचेतन प्रेत दरी रज, रेत भरी मल खेतकी क्यारी ॥
व्याधिकी पोट आराधिकी ओट, उपाधिकी जोट समाधिसों न्यारी ॥
रे जिया देह करे सुख हानि, इते परती तोहि लागत प्यारी ॥
देह तो तोहि तजेगी निदान पैं, तूहि तजे क्यों न देहकी यारी ॥३७॥

दोहा.

सुन प्राणी सद्गुरु कहे, देह खेहकी खानि ।
धरे सहज दुख पोषियो, करे मोक्षकी हानि ॥ ३८ ॥

देहका वर्णन करे है ॥ सवैया ३१ सा.

रेतकीसी गढी कीधो मढि है मसाण कीसी, अंदर अंधेरि जैसी कंदरा है सैलकी ॥ ऊपरकी चमक दमक पट भूषणकी, धोके लगे भली जैसी कलि है कनैलकी ॥ औगुणकी उंडि महा भोंडि मोहकी कनोंडि, मायाकी मसूरति है मूरति है मैलकी ॥ ऐसी देह याहीके सनेह याके संगती सों; व्है रही हमारी मति कोलू कैसे बैलकी ॥ ३९ ॥

ठौर ठौर रकतके कुंड केसनीके झुंड, हाड़निसों भरि जैसे थरि है चुरैलकी ॥ थोरेसे धक्काके लगे ऐसे फटजाय मानो, कागदकी पूरी कीधो चादर है चैलकी । सूचे भ्रम वानि ठानि मूढनिसों पहिचानि, करे सुख हानि अरु खानी वद फैलकी ॥ ऐसी देह याहीके सनेह याके संगतिसों, व्हेरहे हमारी मति कोल्हू कैसे वैलकी ॥ ४० ॥

संसारी जीवकी गति कोल्हूके वैल समान है । सवैया ३१ सा.

पाठी बांधी लोचनिसों संचुके दवोचनीसों, कोचनीके सोचसों निवेदे खेद तनको । धाइवोही धंधा अरु कंधा माहि लग्यो जोत, वार वार आर सहे कायर व्हे मनको । भूख सहे प्यास सहे दुर्जनको त्रास सहे, थिरता न कहे न उसास लहे छिनको ॥ पराधीन घूमे जैसे कोल्हूका कमेरा वैल, तैसाही स्वभाव भैया जगवासी जनको ॥ ४१ ॥

जगतमें डोले जगवासी नररूप धरि, प्रेत कैसे दीप कीधो रेत कैसे धूहे है ॥ दीसे पट भूषण आडंवरसों नीके फीरे, फिके छिन मांहि सांझ अंवर ज्यों सूहे है ॥ मोहके अनल दगे मायाकी मनीसों पगे, डाभकि अणीसों लगे ऊस कैसे फूहे हैं ॥ धरमकी वूझि नांहि उरझे भरम मांहि, नाचि नाचि मरिजाहि मरी कैसे चूहे है ॥ ४२ ॥

जगवासी जीवके मोहका स्वरूप कहे है । सवैया ३१ सा.

जासूं तूं कहत यह संपदा हमारी सो तो, साधुनि ये डारी ऐसे जैसे नाक सिनकी ॥ तासूं तूं कहत हम पुन्य जोग पाइ सो तो, नरककी साई है वढाई डेढ दिनकी ॥ घेरा मांहि पर्‍यो तूं विचारे सुख आखिनिको, माखिनके चूटत मिठाई जैसे भिनकी ॥ एतेपरि होई न उदासी जगवासी जीव, जगमें असाता है न साता एक छिनकी ॥ ४३ ।

दोहा.

यह जगवासी यह जगत्, इनसों तोहि न काज ।
तेरे घटमें जगवसे, तामें तेरो राज ॥ ४४ ॥

जे पिंड ते ब्रह्मांड ये वात साची है। सवैया ३१ सा.

याहि नर पिंडमें विराजे त्रिभुवन थिति, याहीमें त्रिविधि परिणामरूप सृष्टि है ॥ याहीमें करमकी उपाधि दुःख दावानल, याहीमें समाधि सुखवारिदकी वृष्टि है ॥ याहीमें करतार करतूति यामें विभूति, यामें भोग याहीमें वियोग यामें घृष्टि है ॥ याहीमें विलास सर्व गर्भित गुपतरूप; ताहिको प्रगट जाके अंतर सुदृष्टि है ॥ ४५ ॥

आत्माके विलास जाननेका उपदेश गुरु करे है। सवैया २३ सा.

रे रुचिवंत पचारि कहे गुरु, तूं अपनो पद बूझत नाहीं ॥
खोज हिये निज चेतन लक्षण, है निर्जम निज गूझत नाहीं ॥
शुद्ध स्वच्छंद सदा अति उज्जल, मायाके फंद अरुत नाहीं ॥
तेरो स्वरूप न दुंदकि दोहिमें, तोहिमें तोहि है सूझत नाहीं ॥ ४६ ॥

आत्मस्वरूपकी ऊलख ज्ञानसे होय है। सवैया २३ सा.

केइ उदास रहे प्रभु कारण, केइ कहीं उठि जांहि कहींके ॥
केइ प्रणाम करे घडि मूरति, केइ पहार चढे चढि छीके ॥
केइ कहे असमानके ऊपरि, केइ कहे प्रभु हेठ जमींके ॥
मेरो धनी नहिं दूर दिशान्तर, मोहिमें है मोहि सूझत नीके ॥ ४७ ॥

मनका चंचलपणा वतावे है॥ सवैया ३१ सा.

छिनमें प्रवीण छिनहीमें मायासों मलीन, छिनकमें दीन छिनमांहि जैसो शक्र है ॥ लिये दोर धूप छिन छिनमें अनंतरूप, कोलाहल ठानत मथानकोसो तक्र है ॥ नट कोसो थार कीधों हार है रहाट कोसो, नदीकोसो

भोरांकि कुंभार कोसो चक्र है ॥ ऐसो मन भ्रामकसु थिर आज कैसे होइ; औरहीको चंचल अनादिहीको वक्र है ॥ ४९ ॥

मनका चंचलपणा स्थिर कैसे होयगा । सवैया ३१ सा.

धायो सदा काल पै न पायो कहुं सांचो सुख, रूपसों विमुख दुख कूपवास बसा है ॥ धरमको घाती अधरमको संघाती महा, कुरापाति जाकी संनिपात कीसी दया है ॥ मायाकों झपटि गहे कायासों लपटि रहे, भूल्यो भ्रम भीरमें वहीर कोसो ससा है ॥ ऐसो मन चंचल पताका कोसो अंचल सु, ज्ञानके जगेसे निरवाण पंथ धसा है ॥ ५० ॥

दोहा.

जो मन विषय कषायमें, बरते चंचल सोइ ।
जो मन ध्यान विचारसों, रुकेसु अविचल होइ ॥ ५१ ॥
ताते विषय कषायसों, फेरि सुमनकी वाणि ।
शुद्धातम अनुभौ विषें, कीजे अविचल आणि ॥ ५२ ॥

आत्मानुभवमें क्या विचार करना सो कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

अलख अमूरति अरूपी अविनाशी अज, निराधार निगम निरंजन निरंध है ॥ नानारूप भेष धरे भेषको न लेश धरे, चेतन प्रदेश धरे चैतन्यका खंध है ॥ मोह धरे मोहीसो विराजे तामें तोहीसों न मोहीसो तोहीसों न रागी निरबंध है ॥ ऐसो चिदानंद याहि घटमें निकट तेरे, ताहि तूं विचार मन और सब धंध है ॥ ५३ ॥

आत्मानुभव करनेके विधिका क्रम कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

प्रथम सुदृष्टिसों शरीररूप कीजे भिन्न, तामें और सूक्षम शरीर भिन्न मानिये ॥ अष्ट कर्म भावकी उपाधि सोई कीजे भिन्न, ताहूमें सुबुद्धिको विलास भिन्न जानिये ॥ तामें प्रभु चेतन विराजत अखंडरूप, वहे श्रुत

ज्ञानके प्रमाण ठीक आनिये ॥ वाहिको विचार करि वाहीमें मगन हूजे, वाको पद साधिवेकों ऐसी विधि ठानिये ॥ ५४ ॥

आत्मानुभवते कर्मकाबंध नाहि होय है ॥ चौपाई.

इहि विधि वस्तु व्यवस्था जाने । रागादिक निजरूप न माने ॥
तातें ज्ञानवंत जग माहीं । करम बंधको करता नाहीं ॥ ५५ ॥

अनुभवी जो भेदज्ञानी है तिनकी क्रिया कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

ज्ञानी भेदज्ञानसों विलक्ष पुगदल कर्म, आतमीक धर्मसों निराले करि मानतो ॥ ताको मूल कारण अशुद्ध राग भाव ताके, नासिवेकों शुद्ध अनुभौ अभ्यास ठानतो ॥ याही अनुक्रम पररूप भिन्न बंध त्यागि, आपमांहि आपनो स्वभाव गहि आनतो ॥ साधि शिवचाल निरबंध होत तिहू काल, केवल विलोक पाई लोका लोक जानतो ॥ ५६ ॥

अनुभवी (भेदज्ञानी) का पराक्रम अर वैभव कहे है ॥ सवैया ३१ सा.

जैसे कोउ मनुष्य अजान महा बलवान, खोदि मूल वृक्षको उखारे गहि बाहुसों ॥ तैसे मतिमान द्रव्यकर्म भावकर्म त्यागि, व्है रहे अतीत मति ज्ञानकी दशाहुसों ॥ याहि क्रिया अनुसार मिटे मोह अंधकार, जगे जोति केवल प्रधान सविताहु सों ॥ चूके न शकतिसों लुके न पुगदल माहि, धुके मोक्ष थकलों रुके न फिरि काहुसों ॥ ५७ ॥

दोहा.

बंधद्वार पूरण भयो, जो दुख दोष निदान ।
अब बरणूं संक्षेपसे, मोक्षद्वार सुखथान ॥ ५८ ॥

॥ इति अष्टम बंधद्वार समाप्त भयो ॥ ८ ॥

॥ अथ नवमो मोक्षद्वार प्रारंभ ॥ ९ ॥

३१ सा—भेदज्ञान आरासों दुफारा करे ज्ञानी जीव, आतम करम धारा भिन्न भिन्न चरचे ॥ अनुभौ अभ्यास लहे परम धरम गहे, करम भरमको खजानो खोलि खरचे ॥ योंही मोक्ष मख धावे केवल निकट आवे, पूरण समाधि लहे परमको परचे । भयो निरदोर याहि करनो न कछु और, ऐसो विश्वनाथ ताहि बनारसि अरचे ॥ १ ॥

३१ सा—धरम धरम सावधान व्है परम पैनि, ऐसी बुद्धि छैनी घटमांहि डार दीनी है ॥ पैठी नो करम भेदि दरव करम छेदि, स्वभाव विभावताकी संधि शोधि लीनी है । तहां मध्यपाती होय लखी तिन धारा दोय, एक मुधामई एक सुधारस भीनी है ॥ मुधासों विरचि सुधासिंधुमें गमन होय, येती सब क्रिया एक समै बीचि कीनी है ॥ २ ॥

जैसी छैनी लोहकी, करे एकसों दोय ।
जड़ चेतनकी भिन्नता, त्यों सुबुद्धिसों होय ॥ ३ ॥

३१ सा—धरत धरम फल हरत करम मल, मन वच तन बल करत समरपे ॥ भखत असन सित चखत रसन रित, लखत अमित वित कर चित दरपे ॥ कहत मरम धुर दहत भरम पुर, गहत परम गुर उर उपसरपे ॥ रहत जगत हित लहत भगति रित, चहत अगत गति यह मति परपे ॥४॥

राणाकोसो बाणालीने आपासाधे थानाचीने, दानाअंगीं नानारंगी खाना जंगी जोधा है ॥ मायावेली जेतीतेती रेतेंमें धारेती सेती, फंदाहीको कंदा खोदे खेतीकोसों लोधा है ॥ बाधासेती हांतालोरे राधासेती तांता जोरे

आदीसेती नांता तोरे चांदीकोसो सोधा है ॥ जानेजाही ताहीनके मानेराही पाहींपीके, ठानेवातें डाही ऐसो धारावाही वोधा है ॥ ५ ॥

जिन्हकेजु द्रव्य मिति साधत छखंड थिति, विनसे विभाव अरि पंकाति पतन है ॥ जिन्हकेजु भक्तिको विधान एइ नौ निधान, त्रिगुणके भेद मानो चौदह रतन है । जिन्हके सुबुद्धिराणी चूरे महा मोह वज्र, पूरे, मंगलीक जे जे मोक्षके जतन है ॥ जिन्हके प्रणाम अंग सोहे चमूं चतुरंग, तेइ चक्रवर्ति धनु धरे ये अतन है ॥ ६ ॥

श्रवण कीरतन चिंतवन, सेवन वेदन ध्यान ।
लघुता समता एकता, नौधा भक्ति प्रमाण ॥ ७ ॥

३१ सा—कोऊ अनुभवी जीव कहे मेरे अनुभौमें, लक्षण विभेद भिन्न करमको जाल है ॥ जाने आप आपकोंजु आपकरी आपविखे, उतपाति नाश ध्रुव धारा असराल है ॥ सारे विकलप मों सो न्यारे सरवथा मेरे, निश्चय स्वभाव यह व्यवहार चाल है ॥ मैंतो शुद्ध चेतन अनंत चिनमुद्रा धारि, प्रभुता हमारि एकरूप तिहूं काल है ॥ ८ ॥

निराकार चेतना कहावे दरशन गुण, साकार चेतना शुद्ध गुण ज्ञान सारे है ॥ चेतना अद्वैत दोउ चेतन दरव माहि, सामान्य विशेष सत्ताहीको विसतार है ॥ कोउ कहे चेतना चिन्ह नांहीं आतमामें, चेतनाके नाश होत त्रिविधि विकार है ॥ लक्षणको नाश सत्ता नाश मूल वस्तु नाश, ताते जीवं दरवको चेतना आधार है ॥ ९ ॥

चेतन लक्षण आतमा, आतम सत्ता मांहि ।
सत्ता परिमित वस्तु है, भेद तिहूमें नांहि ॥ १० ॥

२३ सा—ज्यों कलधौत सुनारकी संगति, भूषण नाम कहे सब कोई ॥
कंचनता न मिटी तिहि हेतु, वहे फिरि औटिके कंचन होई ॥
त्यों यह जीव अजीव संयोग, भयो बहुरूप हुवो नहि दोई ॥
चेतनता न गई कबहूं तिहि, कारण ब्रह्म कहावत सोई ॥ ११ ॥
देख सखी यह ब्रह्म विराजत, याकी दशा सब याहिको सोहै ॥
एकमें एक अनेक अनेकमें, द्वंद्व लिये दुविधा महि दो है ॥
आप संभारि लखे अपनो पद, आप विसारिके आपहि मोहे ॥
व्यापकरूप यहै घट अंतर, ज्ञानमें कोन अज्ञानमें को है ॥ १२ ॥
ज्यों नट एक धरे बहु भेष, कला प्रगटे जब कौतुक देखे ॥
आप लखे अपनी करतूति, वहै नट भिन्न विलोकत पेखे ॥
त्यों घटमें नट चेतन राव, विभाव दशा धरि रूप विसेखे ॥
खोलि सुदृष्टि लखे अपनो पद, दुंद विचार दशा नहि लेखे ॥ १३ ॥

छंद अडिल्ल—जाके चेतन भाव चिदातम सोइ है। और भाव जो धरे सो और कोइ है ॥ जो चिन मंडित भाव उपादे जानने। त्याग योग्य परभाव पराये मानने ॥ १४ ॥

३१ सा—जिन्हके सुमति जागी भोगसों भये विरागी, परसंग त्यागि जे पुरुष त्रिभुवनमें ॥ रागादिक भावनिसों जिन्हकी रहनि न्यारी, कबहू मगन व्है न रहे धाम धनमें ॥ जे सदैव आपकों विचारे सरवांग शुद्ध, जिन्हके विकलता न व्यापे कछु मनमें ॥ तेई मोक्ष मारगके साधक कहावे जीव, भावे रहो मंदिरमें भावे रहो बनमें ॥ १५ ॥

२३ सा—चेतन मंडित अंग अखंडित, शुद्ध पवित्र पदारथ मेरो ॥
राग विरोध विमोह दशा, समझे भ्रम नाटक पुद्गल केरो ॥

भोग संयोग वियोग व्यथा, अवलोकि कहे यह कर्मजु घेरो ॥
है जिन्हकों अनुभौ इह भांति, सदा तिनकों परमारथ नेरो ॥ १६ ॥

जो पुमान परधन हरे, सो अपराधी अज्ञ ।
जो अपने धन व्यवहरे, सो धनपति सर्वज्ञ ॥ १७ ॥
परकी संगति जो रचे, बंध बढावे सोय ।
जो निज सत्तामें मगन, सहज मुक्त सो होय ॥ १८ ॥
उपजे विनसे थिर रहे, यहुतो वस्तु वखान ।
जो मर्यादा वस्तुकी, सो सत्ता परमान ॥ १९ ॥

३१ सा—लोकालोक मान एक सत्ता है आकाश द्रव्य, धर्म द्रव्य एक सत्ता लोक परमीत है ॥ लोक परमान एक सत्ता है अधर्म द्रव्य, कालके अणू असंख्य सत्ता अगणीत हैं ॥ पुगदल शुद्ध परमाणु की अनंत सत्ता जीवकी अनंत सत्ता न्यारी न्यारी थित है ॥ कोउ सत्ता काहुसों न मिले एकमेक होय, सबे असहाय यों अनादिहीकी रीत है ॥ २० ॥

एइ छह द्रव्य इनहीको हैं जगतजाल, तामें पांच जड़ एक चेतन सुजान है ॥ काहूकी अनंत सत्ता काहूसों न मिले कोइ, एक एक सत्तामें अनंत गुण गान है ॥ एक एक सत्तामें अनंत परजाय फिरे, एकमें अनेक इहि भांति परमाण है ॥ यहै स्यादवाद यह संतनकी मरयाद, यहै सुख पोप यह मोक्षको निदान है ॥ २१ ॥

साधि दधि मंथनमें राधि रस पंथनमें, जहां तहां ग्रंथनमें सत्ताहीको सोर है ॥ ज्ञान भान सत्तामें सुधा निधान सत्ताहीमें, सत्ताकी दुरनि सांझ सत्ता मुख भोर है ॥ सत्ताको स्वरूप मोख सत्ता भूल यहै दोष, सत्ताके

उलंघे धूम धाम चहूं ओर है ॥ सत्ताकी समाधिमें विराजि रहे सोई साहु, सत्ताते निकासि और गहे सोई चोर है ॥ २२

जामें लोक वेदनांहि थापना उछेद नांहि, पाप पुन्य खेद नांहि क्रिया नांहि करनी ॥ जामें राग द्वेष नांहि जामें बंध मोक्ष नांहि, जामें प्रभु दास न आकाश नांहि धरनी ॥ जामें कुल रीत नांहि जामें हार जीत नांहि, जामें गुरु शिष्य नांहि विष नांहि भरनी ॥ आश्रम वरण नांहि काहुका सरण नांहि, ऐसि शुद्ध सत्ताकी समाधि भूमि वरनी ॥ २३ ॥

जाके घट समता नहीं, ममता मगन सदीव ।
रमता राम न जानही, सो अपराधी जीव ॥
अपराधी मिथ्यामती, निरदे हिरदे अंध ।
परको माने आतमा, करे करमको बंध ॥ २५ ॥
झूठी करणी आचरे, झूठे सुखकी आस ।
झूठी भगती हिय धरे, झूठो प्रभुको दास ॥ २६ ॥

३१ सा—माटी भूमि सैलकी सो संपदा वखाने निज, कर्ममें अमृत जाने ज्ञानमें जहर है ॥ अपना न रूप गहे ओरहीसों आपा कहे, सातातो समाधि जाके असाता कहर है ॥ कोपको कृपान लिये मान मद पान किये, मायाकी मयोर हिये लोभकी लहर है ॥ याही भांति चेतन अचेतनकी संगतिसों, साथसों विमुख भयो झूठमें वहर है ॥ २७ ॥

तीन काल अतीत अनागत वरतमान, जगमें अखंडित प्रवाहको डहर है ॥ तासों कहे यह मेरो दिन यह मेरी घरी, यह मेरोही परोई मेरोही पहर है ॥ खेहको खजानो जोरे तासों कहे मेरा गेह, जहां वसें तासों

कहे मेराही शहर है ॥ याहि भांति चेतन अचेतनकी संगतीसों, सांचसो विमुख भयो झूठमें वहर है ॥ २८ ॥

जिन्हके मिथ्यामति नहीं, ज्ञानकला घट मांहि ।
परचे आतम रामसों, ते अपराधी नांहि ॥ २९ ॥

३१ सा—जिन्हके धरम ध्यान पावक प्रगट भयो, संसै मोह विभ्रम विरख तीनो बढे हैं ॥ जिन्हके चितौनि आगे उदै स्वान भुसि भागे, लागे न करम रज ज्ञान गज चढे हैं ॥ जिन्हके समझकी तरंग अंग आगमसे आगममें निपुण अध्यातममें कढे हैं ॥ तेई परमारथी पुनीत नर आठों याम, राम रस गाढ करे यह पाठ पढे हैं ॥ ३० ॥

जिन्हके चिहुंटी चिमटासी गुण चूनवेकों, कुकथाके सुनिवेकों दोउ कान मढे हैं ॥ जिन्हके सरल चित्त कोमल वचन बोले, सौम्यदृष्टि लिये डोले मोम कैसे गढे हैं ॥ जिन्हके सकति जगी अलख अराधिवेकों, परम समाधि साधिवेकों मन बढे हैं ॥ तेई परमारथ पुनीत नर आठों याम, राम रस गाढ करे यह पाठ पढे हैं ॥ ३१ ॥

राम रसिक अरु राम रस, कहन सुननको दोइ ।
जब समाधि परगट भई, तब दुविधा नहिं कोइ ॥ ३२ ॥
नंदन वंदन थुति करन, श्रवण चिंतवन जाप ।
पठन पठावन उपदिशन, बहुविधि क्रिया कलाप ॥ ३३ ॥
शुद्धातम अनुभव जहां, शुभाचार तिहि नांहि ।
करम करम मारग विषें, शिव मारग शिव मांहि ॥ ३४ ॥

चौपाई—इहि विधि वस्तु व्यवस्था जैसी । कही जिनेंद्र कही मैं तैसी ॥

जे प्रमाद संयुत मुनिराजा । तिनके शुभाचारसौं काजा ॥ ३५ ॥
जहां प्रमाद दशा नहिं व्यापे । तहां अवलंबन आपो आपे ॥
ता कारण प्रमाद उतपाती । प्रगट मोक्ष मारगको घाती ॥ ३६ ॥
जे प्रमाद संयुक्त गुसांई । उठहि गिरहि गिंदुकके नांई ॥
जे प्रमाद तजि उद्धत होई । तिनको मोक्ष निकट द्रिग सोई ॥ ३७
घटमें है प्रमाद जब तांई । पराधीन प्राणी तब तांई ॥
जब प्रमादकी प्रभुता नासे । तब प्रधान अनुभौ परकासे ॥ ३८ ॥

ता कारण जगपंथ इत, उत शिव मारग जोर ।
परमादी जगकूं ढुके, अपरमाद शिव ओर ॥ ३९ ॥
जे परमादी आलसी, जिन्हके विकलप भूर ।
होइ सिथल अनुभौविषे, तिन्हको शिवपथ दूर ॥ ४० ।
जे परमादी आलसी, ते अभिमानी जीव ।
जे अविकलपी अनुभवी, ते समरसी सदीव ॥ ४१ ॥
जे अविकलपी अनुभवी, शुद्ध चेतनायुक्त ।
ते मुनिवर लघुकालमें, होई करमसे मुक्त ॥ ४२ ॥

कवित्त—जैसे पुरुष लखे पहाड़ चढि, भूचर पुरुष तांहि लघु लग्गे ॥
भूचर पुरुष लखे ताको लघु, उतर मिले दुहूको भ्रम भग्गे ॥
तैसे अभिमानी उन्नत गल, और जीवको लघुपद दग्गे ॥
अभिमानीको कहे तुच्छ सब, ज्ञान जगे समता रस जग्गे ॥ ४३ ॥

३१ सा—करमके भारी समुझे न गुणको मरम, परम अनीति अधरम रीती गहे है ॥ होइ न नरम चित्त गरम धरम हूते, चरमकी

दृष्टिसों भरम भूलि रहे हैं ॥ आसन न खोले मुख वचन न बोले सिर, नायेहू न डोले मानो पाथरके चहे है ॥ देखनके हाउ भव पंथके बढाउ ऐसे, मायाके खटाउ अभिमानी जीव कहे है ॥ ४४ ॥

धीरके धरैय्या भव नीरके तरैय्या भय, भीरके हरैय्या वर वीर ज्यों उमहे हैं ॥ मारके मरैय्या सुविचारके करैय्या सुख, ढारके ढरैय्या गुण लोसों लह लहे हैं ॥ रूपके रिझैय्या सब नयके समझैय्या सब हीके लघु भैय्या सबके कुबोल सहे हैं ॥ वामके वमैय्या दुख दामके दमैय्या ऐसे, रामके रमैय्या नर ज्ञानी जीव कहे हैं ॥ ४५ ॥

चौपाई—जे समकिती जीव समचेती । तिनकी कथा कहू तुमसेती ॥
जहां प्रमाद क्रिया नहिं कोई । निरविकल्प अनुभौ पद सोई ॥ ४६ ॥
परिग्रह त्याग जोर थिर तीनो । करम बंध नहिं होय नवीनो ॥
जहां न राग द्वेष-रस मोहे । प्रगट मोक्ष मारग मुख सोहे ॥ ४७ ॥
पूरव बंध उदय नहिं व्यापे । जहां न भेद पुन्य अरु पापे ॥
द्रव्य भाव गुण निर्मल धारा । बोध विधान विविध विस्तारा ॥ ४८ ॥
जिन्हके सहज अवस्था ऐसी । तिन्हके हिरदे दुविधा कैसी ॥
जे मुनि क्षपक श्रेणि चढ़ि धाये । ते केवलि भगवान कहाये ॥ ४९ ॥

इह विधि जे पूरण भये, अष्टकर्म वन दाहि ।
तिन्हकी महिमा जे लखे, नमे बनारसि ताहि ॥ ५० ॥

छप्पै छंद—भयो शुद्ध अंकुर, गयो मिथ्यात्व मूल नसि । क्रम क्रम होत उद्योत, सहज जिम शुक्ल पक्ष ससि । केवल रूप प्रकाश, भासि

सुख रासि धरम ध्रुव। करि पूरण थिति आउ, त्यागि गत भाव परम हुव। इह विधि अनन्य प्रभुता धरत, प्रगटि बुंद सागर भयो। अविचल अखंड अनभय अखय, जीवद्रव्य जगमांहि जयो ॥ ५१ ॥

३१ सा—ज्ञानावरणीके गये जानिये जु है सु सब, दर्शनावरणके गयेते सब देखिये ॥ वेदनी करमके गयेते निराबाध रस, मोहनीके गये शुद्ध चारित्र विसेखिये ॥ आयुकर्म गये अवगाहन अटल होय, नाम कर्म गयेते अमूरतीक पेखिये ॥ अगुरु अलघुरूप होय गोत्र कर्म गये, अंतराय गयेते अनंत बल लेखिये ॥ ५२ ॥

॥ इति नवमो मोक्षद्वार समाप्त भयो ॥ ९ ॥

॥ अथ दशमो सर्वविशुद्धि द्वार प्रारंभः ॥ १० ॥

इति श्री नाटकग्रंथमें, कह्यो मोक्ष अधिकार ॥
अब बरनों संक्षेपसों, सर्व विशुद्धीद्वार ॥ १ ॥

३१ सा—कर्मनिको करता है भोगनिको भोगता है, जाके प्रभुतामें ऐसो कथन अहित है ॥ जामें एक इंद्रियादि पंचधा कथन नाहि, सदा निरदोष बंध मोक्षसों रहित है ॥ ज्ञानको समूह ज्ञान गम्य है स्वभाव जाको, लोक व्यापि लोकातीत लोकमें महित है ॥ शुद्ध वंश शुद्ध चेतनाके रस अंश भर्यो, ऐसो हंस परम पुनीतता सहित है ॥ १ ॥ जो निश्चै निर्मल सदा, आदि मध्य अरु अंत। सो चिद्रूप बनारसी, जगत माहिं जैवंत ॥ २ ॥

चौपाई—जीव करम करता नहिं ऐसे । रस भोक्ता स्वभाव नहिं तैसे ॥
मिथ्या मतिसों करता होई । गये अज्ञान अकरता सोई ॥ ३ ॥

३१ सा—निहचै निहारत स्वभाव जांहि आतमाको, आतमीक धरम परम परकामना ॥ अतीत अनागत वरतमान काल जाको, केवल स्वरूप गुण लोकाऽलोक भासना ॥ सोई जीव संसार अवस्था मांहि करमको करतासों दीसे लिये भरम उपासना ॥ यहै महा मोहको पसार यहै मिथ्याचार, यहै भो विकार यह व्यवहार वासना ॥ ४ ॥

चौपाई—यथा जीव कर्त्ता न कहावे । तथा भोगता नाम न पावे ॥
है भोगी मिथ्यामति मांहीं । गये मिथ्यात्व भोगता नाहीं ॥ ५ ॥

३१ सा—जगवासी अज्ञानी त्रिकाल परजाय बुद्धि, सोतो विषै भोगनिसों भोगता कहावे है ॥ समकिती जीव जोग भोगसों उदासी ताते सहज अभोगताजु ग्रंथनिमें गायो है ॥ याहि भांति वस्तुकी व्यवस्था अवधारे बुध, परभाव त्यागि अपनो स्वभाव आयो है ॥ निरविकल्प निरुपाधि आतम आराधि, साधि जोग जुगति समाधिमें समायो है ॥ ६ ॥

चिनमुद्रा धारी ध्रुव धर्म अधिकारी गुण, रतन भंडारी आप हारी कर्म रोगको ॥ प्यारो पंडितनको हुस्यारो मोक्ष मारगमें, न्यारो पुदगलसों उजारो उपयोगको ॥ जाने निज पर तत्त रहे जगमें विरत्त, गहे न ममत्त मन वच काय जोगको ॥ ता कारण ज्ञानी ज्ञानावरणादि करमको, करता न होइ भोगता न होइ भोगको ॥ ७ ॥

निर्भिलाष करणी करे, भोग अरुचि घट मांहि ।
ताते साधक सिद्धसम, कर्ता भुक्ता नांहि ॥ ८ ॥

कवित्त—जो हिय अंध विकल मिथ्यात घर, मृषा सकल विकल्प उपजावत ॥
गहि एकांत पक्ष आतमको, करता मानि अधोमुख धावत ॥
त्यो जिनमती द्रव्य चारित्र कर, करनी करि करतार कहावत ॥
वंछित मुक्ति तथापि मूढमति, विन समकित भव पार न पावत ॥ ९ ॥

चौपाई—चेतन अंक जीव लखि लीना । पुद्गल कर्म अचेतन चीना ।
वासी एक खेतके दोऊ । जदपि तथापि मिले न कोऊ ॥ १० ॥

दोहा—निजनिज भाव क्रिया सहित, व्यापक व्याप्य न कोय ।
कर्त्ता पुद्गल कर्मका, जीव कहांसे होय ॥ ११ ॥

३१ सा—जीव अर पुद्गल करम रहे एक खेत, यद्यपि तथापि सत्ता न्यारी न्यारी कही है ॥ लक्षण स्वरूप गुण परजै प्रकृति भेद, दुहूमें अनादि हीकी दुविधा व्है रही है ॥ एते पर भिन्नता न भासे जीव करमकी, जोलों मिथ्याभाव तोलों ओंधी वायू वही है ॥ ज्ञानके उद्योत होत ऐसी सूधी दृष्टि भई जीव कर्म पिंडको अकरतार सही है ॥ १२ ॥

एक वस्तु जैसे जु है, तासें मिले न आन ।
जीव अकर्ता कर्मको, यह अनुभो परमान ॥ १२ ॥

चौपाई—जो दुरमती विकल अज्ञानी । जिन्ह स्वरीत पर रीत न जानी ।
माया मगन भरमके भरता । ते जिय भाव करमके करता ॥ १४ ॥

जे मिथ्यामति तिमिरसों, लखे न जीव अजीव ।
तेई भावित कर्मको, कर्ता होय सदीव ॥ १५ ॥
जे अशुद्ध परणति धरे, करे अहंपर मान ।
ते अशुद्ध परिणामके, कर्ता होय अजान ॥ १६ ॥

शिष्य कहे प्रभु तुम कह्यो, दुविध कर्मका रूप ।
द्रव्यकर्म पुद्गलमई, भावकर्म चिद्रूप ॥ १७ ॥
कर्ता द्रव्यजु कर्मको, जीव न होइ त्रिकाल ।
अब यह भावित कर्म तुम, कहो कोनकी चाल ॥ १८ ॥
कर्त्ता याको कोन है, कौन करे फल भोग ।
के पुद्गल के आतमा, के दुहुको संयोग ॥ १९ ॥
क्रिया एक कर्त्ता जुगल, यो न जिनागम मांहि ।
अथवा करणी औरकी, और करे यो नांहि ॥ २० ॥
करे और फल भोगवे, और बने नहिं एम ।
जो करता सो भोगता, यहै यथावत जेम ॥ २१ ॥
भावकर्म कर्त्तव्यता, स्वयंसिद्ध नहिं होय ।
जो जगकी करणी करे, जगवासी जिय सोय ॥ २२ ॥
जिय कर्त्ता जिय भोगता, भावकर्म जियचाल ।
पुद्गल करे न भोगवे, दुविधा मिथ्याचाल ॥ २३ ॥
ताते भावित कर्मको, करे मिथ्याती जीव ।
सुख दुख आपद संपदा, भुंजे सहज सदीव ॥ २४ ॥

३१ सा—कोइ मूढ विकल एकंत पक्ष गहे कहे, आतमा अकरतार पूरण परम है ॥ तिनसों जु कोउ कहे जीव करता है तासे, फेरि कहे करमकों करता करम है ॥ ऐसे मिथ्यामगन मिथ्याती ब्रह्मघाती जीव, जिन्हके हिये अनादि मोहको भरम है ॥ तिनके मिथ्यात्व दूर करवेकूं कहे गुरु, स्याद्वाद परमाण आतम धरम हैं ॥२९॥

चेतन करता भोगता, मिथ्या मगन अजान ।
नहिं करता नहिं भोगता, निश्चै सम्यकवान ॥ २६ ॥

३१ सा—जैसे सांख्यमति कहे अलख अकरता है, सर्वथा प्रकार करता न होइ कबही ॥ तैसे जिनमति गुरुमुख एक पक्ष सुनि, यांहि भांति माने सो एकांत तजो अबही ॥ जोलो दुरमति तोलों करमको करता है, सुमती सदा अकरतार कह्यो सबही ॥ जाके घट ज्ञायक स्वभाव जग्यो जबहीसे, सो तो जगजालसे निरालो भयो तबही ॥ २७ ॥

बोद्ध क्षणिकवादी कहे, क्षणभंगुर तनु मांहि ।
प्रथम समय जो जीव है, द्वितिय समयमें नांहि ॥
ताते मेरे मतविषें, करे करम जो कोय ॥
सो न भोगवे सर्वथा, और भोगता होय ॥ २९ ॥
यह एकंत मिथ्यात पख, दूर करनके काज ।
चिद्विलास अविचल कथा, भाषे श्रीजिनराज ॥ ३० ॥
बालपन काहू पुरुष, देखे पुरकइ कोय ।
तरुण भये फिरके लखे, कहे नगर यह सोय ॥ ३१ ॥
जो दुहु पनमें एक थो, तो तिहि सुमरण कीय ।
और पुरुषको अनुभव्यो, और न जाने जीय ॥ ३२ ॥
जब यह वचन प्रगट सुन्यो, सुन्यो जैनमत शुद्ध ।
तब इकांतवादी पुरुष, जैन भयो प्रति बुद्ध ॥ ३३ ॥

३१ सा—एक परजाय एक समैमें विनसि जाय, दूजी परजाय दूजे समै उपजति है ॥ ताको छल पकरिके बोध कहे समै समै

नवो जीव उपजे पुरातनकी क्षति है ॥ ताते माने करमको करता है और जीव, भोगता है और वाके हिये ऐसी मति है ॥ परजाय प्रमाणको सरवथा द्रव्य जाने, ऐसे दुरबुद्धिकों अवश्य दुरगति है ॥ ३४ ॥

कहे अनातमकी कथा चहे न आतम शुद्धि ।
रहे अध्यातमसे विमुख, दुराराध्य दुर्बुद्धि ॥ ३५ ॥
दुर्बुद्धी मिथ्यामती, दुर्गति मिथ्याचाल ।
गहि एकंत दुर्बुद्धिसे, मुक्त न होई त्रिकाल ॥ ३६ ॥

३१ सा—कायासे विचारे प्रीति मायाहीमें हारी जीति, लिये हठ रीति जैसे हारीलको लकरी ॥ चूंगुलके जोर जैसे गोह गहि रहे भूमि, त्योंही पाय गाडे पें न छोडे टेक पकरी ॥ मोहकी मरोरसों भरमको न टोर पावे, धावे चहुं ओर ज्यों बढावे जाल मकरी ॥ ऐसे दुरबुद्धि भूलि झूठके झरोखे झूलि, फूलि फिरे ममता जंजरनीसों जकरी ॥ ३७ ॥

वात सुनि चौकि ऊठे वातहीसां भौंकि उठे, वातसों नरम होइ वातहीसों अकरी ॥ निंदा करे साधुकी प्रशंसा करे हिंसककी, साता माने प्रभुता असाता माने फकरी ॥ मोक्ष न सुहाइ दोप देखे तहां पैठि जाइ, कालसों डराइ जैसे नाहरसों बकरी ॥ ऐसे दुरबुद्धि भूलि झूठसे झरोखे झूलि, फूली फिरे ममता जंजीरनिसो जकरी ॥ ३८ ॥

कवित्त—केई कहे जीव क्षणभंगुर, केई कहे करम करतार । केई कर्म रहित नित जंपाहि, नय अनंत नाना दरकार । जे एकांत गहे ते मूरख, पंडित अनेकांत पख धार । जैसे भिन्न भिन्न मुकता गण, गुणसों गहत कहावे हार ॥ ३९ ॥

यथा सूत संग्रह विना, मुक्त माल नहिं होय।
तथा स्याद्वादी विना, मोक्ष न साधे कोय ॥ ४० ॥
पद स्वभाव पूरव उदै, निश्चै उद्यम काल।
पक्षपात मिथ्यात पथ, सर्वंगी शिव चाल ॥ ४१ ॥

३१ सा—एक जीव वस्तुके अनेक गुण रूप नाम, निज योग शुद्ध पर योगसों अशुद्ध है ॥ वेदपाठी ब्रह्म कहे, मीमांसक कर्म कहे, शिवमति शिव कहे बौध कहे बुद्ध है ॥ जैनी कहे जिन न्यायवादी करतार कहे छहों दरसनमें वचनको विरुद्ध है ॥ वस्तुको स्वरूप पहिचाने सोइ परवीण, वचनके भेद भेद माने सोई शुद्ध है ॥ ४२ ॥

वेदपाठी ब्रह्म माने निश्चय स्वरूप गहे, मीमांसक कर्म माने उदैमें रहत है ॥ बौद्धमती बुद्ध माने सूक्षम स्वभाव साधे, शिवमति शिवरूप कालको कहत है ॥ न्याय ग्रंथके पढैय्या थापे करतार रूप, उद्यम उदीरि उर आनंद लहत है ॥ पांचो दरसनि तेतो पोपे एक एक अंग, जैनी जिनपंथि सरवंगि नै गहत है ॥ ४३ ॥

निहचै अभेद अंग उदै गुणकी तरंग, उद्यमकी रीति लिये उद्धता शकति है ॥ परयाय रूपको प्रमाण सूक्षम स्वभाव, कालकीसी ढाल परिणाम चक्र गति है ॥ याही भांति आतम दरवके अनेक अंग, एक माने एककों न माने सो कुमति है ॥ एक डारि एकमें अनेक खोजे सो सुबुद्धि, खोजि जीवे वादि मरे सांची कहवति है ॥ ४४ ॥

एकमें अनेक है अनेकहीमें एक है सो, एक न अनेक कछु कह्यो न परत है ॥ करता अकरता है भोगता अभोगतां है, उपजे न उपजत मरे

न भरत है ॥ बोलत विचरत न बोले न विचरे कछू, भेखको न भाजन पै भेखसो धरत है ॥ ऐसो प्रभु चेतन अचेतनकी संगतीसों, उलट पलट नट बाजीसी करत है ॥ ४५ ॥

नट बाजी विकलप दशा, नांही अनुभौ योग ।
केवल अनुभौ करनको, निर्विकलप उपयोग ॥ ४६ ॥

३१ सा—जैसे काहू चतुर सवांरी है मुकत माल, मालाकी क्रियामें नाना भांतिको विग्यान है । क्रियाको विकलप न देखे पहिरन वारो, मोतीनकी शोभामें मगन सुखवान है ॥ तैसे न करे न भुंजे अथवा करेसो भुंजे, ओर करे और भुंजे सब नय प्रमान है॥ यद्यपि तथापि विकलपविधि त्याग योग, नीरविकलप अनुभौ अमृत पान है ॥ ४७ ॥

द्रव्यकर्म कर्ता अलख, यह व्यवहार कहाव ।
निश्चै जो जैसा दरव, तैसो ताको भाव ॥ ४८ ॥

३१ सा—ज्ञानको सहज ज्ञेयाकार रूप परिणमें, यद्यपि तथापि ज्ञान ज्ञानरूप कह्यो है ॥ ज्ञेय ज्ञेयरूपसों अनादिहीकी मरयाद, काहु वस्तु काहूको स्वभाव नहि गह्यो है ॥ एतेपरि कोउ मिथ्यामति कहे ज्ञेयाकार, प्रतिभासनिसों ज्ञान अशुद्ध व्है रह्यो है ॥ याही दुरबुद्धिसों विकल भयो डोलत है, समुझे न धरम यों भर्म मांहि बह्यो है ॥ ४९ ॥

चौपाई—सकल वस्तु जगमें असहोई । वस्तु वस्तुसों मिले न कोई ॥
जीव वस्तु जाने जग जेती । सोऊ भिन्न रहे सब सेती ॥ ५० ॥

कर्म करे फल भोगवे, जीव अज्ञानी कोइ ।
यह कथनी व्यवहारकी, वस्तु स्वरूप न होइ ॥ ५१ ॥

ज्ञेयाकार ज्ञानकी परणति, पै वह ज्ञान ज्ञेय नहिं होय ॥
ज्ञेयरूप षट् द्रव्य भिन्न पद, ज्ञानरूप आतम पद सोय ॥
जाने भेद भाव विचक्षण, गुण लक्षण सम्यक्दृग जोय ॥
मूरख कहे ज्ञान महि आकृति, प्रगट कलंक लखे नहि कोय ॥ ९२ ॥
निराकार जो ब्रह्म कहावे । सो साकार नाम क्यों पावे ॥
ज्ञेयाकार ज्ञान जब ताईं । पूरण ब्रह्म नांहि तब ताईं ॥ ९३ ॥
ज्ञेयाकार ब्रह्म मल माने । नाश करनको उद्यम ठाने ॥
वस्तु स्वभाव मिटे नहि कोही । ताते खेद करे सठ योंही ॥ ९४ ॥

मूढ मरम जाने नहीं, गहि एकांत कुपक्ष ॥ ५४ ॥
स्याद्वाद सरवंगमें, माने दक्ष प्रत्यक्ष ॥ ५५ ॥
शुद्ध द्रव्य अनुभौ करे, शुद्ध दृष्टि घटमांहि ।
ताते सम्यक्वंत नर, सहज उछेदक नांहि ॥ ५६ ॥

३१ सा—जैसे चंद्र किरण प्रगटि भूमि स्वेत करे, भूमिसी न होत सदा ज्योतिसी रहत है ॥ तैसे ज्ञान शकति प्रकाशे हेय उपादेय, ज्ञेयाकार दीसे पै न ज्ञेयको गहत है ॥ शुद्ध वस्तु शुद्ध परयायरूप परिणमे, सत्ता परमाण मांहि ढाहे न ढठत है ॥ सोतो औररूप कबहू न होय सरवथा, निश्चय अनादि जिनवाणी यों कहत है ॥ ९७ ॥

२३ सा—राग विरोध उदै जबलों तबलों, यह जीव मृषा मग धावे ॥
ज्ञान जग्यो जब चेतनको तब, कर्म दशा पर रूप कहावे ॥
कर्म बिलक्ष करे अनुभौ तहां, मोह मिथ्यात्व प्रवेश न पावे ॥
मोह गये उपजे सुख केवल, सिद्ध भयो जगमांहि न आवे ॥ ९८ ॥

छप्पै छंद—जीव कर्म संयोग, सहज मिथ्यात्व धर । राग द्वेष परणति प्रभाव, जाने न आप पर । तम मिथ्यात्व मिटि गये, भये समकित उद्योत शशि । राग द्वेष कछु वस्तु नाहि, छिन मांहि गये नशि । अनुभव अभ्यास सुख राशि रमि, भयो निपुण तारण तरण । पूरण प्रकाश निहचल निरखि, बनारसी वंदत चरण ॥ ५९ ॥

३१ सा—कोउ शिष्य कहे स्वामी राग द्वेष परिणाम, ताको मूल प्रेरक कहहु तुम कोन है ॥ पुद्गल करम जोग किंधो इंद्रिनिके भोग, कींधो धन कींधो परिजन कींधो भोंन है ॥ गुरु कहे छहो द्रव्य अपने अपने रूप, सवनिको सदा असहाई परिणोंण है ॥ कोउ द्रव्य काहूको न प्रेरक कदाचि ताते, राग द्वेष मोह मृषा मदिरा अचोंन है ॥ ६१ ॥

कोउ मूरख यों कहे, राग द्वेष परिणाम ।
पुद्गलकी जोरावरी, बरते आतम राम ॥ ६१ ॥
ज्यों ज्यों पुद्गल बल करे, धरिधरि कर्मजु भेष ।
राग द्वेषको परिणमन; त्यों त्यों होय विशेष ॥ ६२ ॥
यह विधि जो विपरीत पण, गहे सद्दहे कोय ।
सो नर राग विरोधसों, कबहूं भिन्न न होय ॥ ६३ ॥
सुगुरु कहे जगमें रहे, पुद्गल संग सदीव ।
सहज शुद्ध परिणामको, औसर लहे न जीव ॥ ६४ ॥
ताते चिद्भावन विषें, समरथ चेतन राव ।
राग विरोध मिथ्यातमें, सम्यकूमें शिवभाव ॥ ६५ ॥

ज्यों दीपक रजनी समें, चहुँ दिशि करे उदोत ।
प्रगटे घटघट रूपमें, घटपट रूप न होत ॥ ६६ ॥
त्यों सुज्ञान जाने सकल, ज्ञेय वस्तुको मर्म ।
ज्ञेयाकृति परिणमे पै, तजे न आतम धर्म ॥ ६७ ॥
ज्ञानधर्म अविचल सदा, गहे विकार न कोय ।
राग विरोध विमोह भय, कबहूं भूलि न होय ॥ ६८ ॥
ऐसी महिमा ज्ञानकी, निश्चय है घटमांहि ।
मूरख मिथ्यादृष्टिसों, सहज विलोके नांहि ॥ ६९ ॥
पर स्वभावमें मगन रहे, ठाने राग विरोध ।
धरे परिग्रह धारना, करे न आतम शोध ॥ ७० ॥
चौपाई–मूरखके घट दुरमति भासी । पंडित हिये सुमति परकाशी ॥
दुरमति कुबजा करम कमावे । सुमति राधिका राम रमावे ॥ ७१ ॥
दोहा–कुब्जा कारी कूबरी, करे जगतमें खेद ।
असख अराधे राधिका, जाने निज पर भेद ॥ ७२ ॥

३१ सा—कुटिला कुरूप अंग लगी है पराये संग, अपनो प्रमाण करि आपहि बिकाई है ॥ गहे गति अंधकीसी, सकति कमंध कीसी बंधको बढाव करे धंधहीमें धाई है ॥ रांडकीसी रीत लिये मांडकीसी मतवारि, सांड ज्यों स्वछंद डोले भांडकीसी जाई है ॥ घरका न जाने भेद करे पराधीन खेद, याते दुरबुद्धी दासी कुबजा कहाई है ॥ ७३ ॥

रूपकी रसीली भ्रम कुलपकी कीली शील, सुधाके समुद्र झीलि सीलि सुखदाई है ॥ प्राची ज्ञानभानकी अजाची है निदानकी, सुराचि निरवाची

ठोर साची ठकुराई है ॥ धामकी खबरदार रामकी रमन हार, राधा रस पंथनिके ग्रंथनिमें गाई है ॥ संतनकी मानी निरवानी नूरकी सिसाणी, याते सदबुद्धि राणी राधिका कहाई है ॥ ७४ ॥

वह कुब्जा वह राधिका, दोऊ गति मति मान ।
वह अधिकारी कर्मकी, वह विवेककी खान ॥ ७५ ॥
कर्मचक्र पुद्गल दशा, भावकर्म मतिवक्र ।
जो सुज्ञानको परिणमन, सो विवेक गुणचक्र ॥ ७६ ॥

जैसे नर खिलार चोपरिको, लाभ विचारि करे चितचाव ॥
धरे सवारि सारि बुधि बलसों, पासा जो कुछ परेसु दाव ॥
कवित्त—तैसे जगत जीव स्वारथको, करि उद्यम चिंतवे उपाव ॥
लिख्यो ललाट होइ सोई फल, कर्म चक्रको यही स्वभाव ॥ ७७ ॥
जैसे नर खिलार सतरंजको, समुझे सब संतरंजकी घात ॥
चले चाल निरखे दोऊ दल, महुरा गिणे विचारे मात ॥
तैसे साधु निपुण शिव पथमें, लक्षण लखे तजे उतपात ॥
साधे गुण चिंतवे अभयपद, यह सुविवेक चक्रकी बात ॥ ७८ ॥

सतरंज खेले राधिका, कुब्जा खेले सारि ।
याके निशिदिन जीतवो, वाके निशिदिन हारि ॥ ७९ ॥
जाके उर कुब्जा बसे, सोई अलख अजान ।
जाके हिरदे राधिका, सो बुध सम्यकवान ॥ ८० ॥

३१ सा—जहां शुद्ध ज्ञानकी कला उद्योग दीसे तहां, शुद्धता प्रमाण शुद्ध चारित्रको अंश है ॥ ता कारण ज्ञानी सब जाने ज्ञेय वस्तु

मर्म, वैराग्य विलास धर्म वाको सरवंस है ॥ राग द्वेप मोहकी दशासों भिन्न रहे याते सर्वथा त्रिकाल कर्म जालसों विध्वंस है ॥ निरुपाधि आतम समाधिमें विराजे ताते, कहिये प्रगट पूरण परम हंस है ॥ ८१ ॥

ज्ञायक भाव जहां तहां, शुद्ध चरणकी चाल ।
ताते ज्ञान विराग मिलि, शिव साधे समकाल ॥ ८२ ॥
यथा अंधके कंध परि, चढे पंगु नर कोय ।
याके दृग वाके चरण, होय पथिक मिलि दोय ॥८३ ॥
जहां ज्ञान क्रिया मिले, तहां मोक्ष मग सोय ।
वह जाने पदको मरम, वह पदमें थिर होय ॥ ८४ ॥
ज्ञान जीवकी सजगता, कर्म जीवकूं भूल ।
ज्ञान मोक्ष अंकूर है, कर्म जगतको मूल ॥ ८५ ॥
ज्ञान चेतनाके जगे, प्रगटे केवल राम ।
कर्म चेतनामें बसे, कर्म बंध परिणाम ॥ ८६ ॥

चौपाई—जवलग ज्ञान चेतना भारी । तवलग जीव विकल संसारी ॥
जव घट ज्ञान चेतना जागी । तव समकिती सहज वैरागी ॥ ८७ ॥
सिद्ध समान रूप निज जाने । पर संयोग भाव परमाने ॥
शुद्धातमा अनुभौ अभ्यासे । त्रिविधि कर्मकी ममता नासे ॥ ८८ ॥

ज्ञानवंत अपनी कथा, कहे आपसों आप ।
मैं मिथ्यात दशाविषें, कीने बहुविध पाप ॥ ८९ ॥

३१ सा—हिरदे हमारे महा मोहकी विकलताई, ताते हम करुणा न क़ीनी जीव घातकी ॥ आप पाप कीने औरनिकों उपदेश दीने हुति

अनुमोदना हमारे याही बातकी ॥ मन वच कायामें गमन व्है कमायो कर्म, धाये भ्रम जालमें कहाये हम पातकी ॥ ज्ञानके उदयते हमारी दशा ऐसी भई, जैसे भानु भासत अवस्था होत प्रातकी ॥ ९० ॥

ज्ञान भान भासत प्रमाण ज्ञानवत कहे, करुणा निधान अमलान मेरा रूप है। कालसों अतीत कर्म चालसों अभीत जोग, जालसों अजीत जाकी महिमा अनूप है। मोहको विलास यह जगतको वास मैं तो, जगतसों शून्य पाप पुन्य अंध कूप है ॥ पाप किने किये कोन करे करि है सो कोन, क्रियाको विचार सुपनेकी दोर धूप है ॥ ९१ ॥

मैं यों कीनो यों करौं, अब यह मेरो काम।
मनवचकायामें बसे, ये मिथ्यात परिणाम ॥ ९२ ॥
मनवचकाया कर्मफल, कर्मदशा जड़अंग ।
दरवित पुद्गल पिंडमें, भावित कर्म तरंग ॥ ९३ ॥
ताते भावित धर्मसों, कर्म स्वभाव अपूठ ।
कोन करावे को करे, कोसर लहें सब झूठ ॥ ९४ ॥
करणी हित हरणी सदा, मुक्ति वितरणी नांहि ।
गणी बंध पद्धति विषे, सनी महा दुखमांहि ॥ ९५ ॥

३१ सा— करणीके धरणीमें महा मोह राजा बसे, करणी अज्ञान भाव राक्षसकी पुरी है ॥ करणी करम काया पुद्गलकी प्रति छाया, करणी प्रगट माया मिसरीकी छुरी है ॥ करणीके जालमें उरझि रह्यो चिदानंद, करणीकी उट ज्ञानभान दुति दुरी है ॥ आचारज कहे करणीसों व्यवहारी जीव, करणी सदैव निहचै स्वरूप बुरी है ॥ ९६ ॥

चौपाई—मृषा मोहकी परणति फैली । ताते करम चेतना मैली ॥
ज्ञान होत हम समझे येती । जीव सदीव भिन्न परसेती ॥ ९७ ॥
जीव अनादि स्वरूप मम, कर्म रहित निरुपाधि ॥
अविनाशी अशरण सदा, सुखमय सिद्ध समाधि ॥९८॥
चौपई—मैं त्रिकाल करणीसों न्यारा । चिदाविलास पद जगत उज्यारा॥
राग विरोध मोह मम नांही । मेरो अवलंबन मुझमांही ॥ ९९ ॥
२३ सा—सम्यकवंत कहे अपने गुण, मैं नित राग विराधसों रीतो ॥
मैं करतूति करूं निरवंछक, मो ये विषै रस लागत तीतो ॥
शुद्ध स्वचेतनको अनुभौ करि, मैं जग मोह महा भट जीतो ॥
मोक्ष सन्मुख भयो अब मो कहु, काल अनंत इही विधि बीतो॥१००॥
कहे विचक्षण मैं रहूं, सदा ज्ञान रस साचि ॥
शुद्धातम अनुभूतिसों, खलित न होहु कदाचि ॥१०१॥
पूर्वकर्मविष तरु भये, उदै भोग फलफूल ।
मैं इनको नहिं भोगता, सहज होहु निर्मूल ॥ १०२ ॥
जो पूर्वकृत कर्मफल, रुचिसे भुंजे नांहि ।
मगन रहे आठो पहर, शुद्धातम पद मांहि ॥ १०३ ॥
सो बुध कर्मदशा रहित, पावे मोक्ष तुरंत ।
भुंजे परम समाधि सुख, आगम काल अनंत ॥ १०४ ॥
छंद—जो पूरव कृतकर्म, विरख विष फल नहि भुंजे । जोग जुगति कारिज करंत, ममता न प्रयुंजे । राग विरोध निरोधि, संग विकलप सब छंडे । शुद्धातम अनुभौ अभ्यास, शिव नाटक मंडे । जो ज्ञानवंत इह मग

चलत, पूरण व्है केवल लहे । सो परम अतींद्रिय सुखविषैं, मगन रूप संतत रहे ॥ १०५ ॥

३१ सा—निरभै निराकुल निगम वेद निरभेद, जाके पराकाशमें जगत माइयतु है ॥ रूप रस गंध फास पुद्गलको विलास, तासों उदवस जाको जस गाइयतु है ॥ विग्रहसों विरत परिग्रहसों न्यारो सदा, जामें जोग निग्रहको चिन्ह पाइयतु है ॥ सो है ज्ञान परमाण चेतन निधान तांहि, अविनाशी ईश मानी सीस नाइयतु है ॥ १०६ ॥

३१ सा—जैसे निरभेदरूप निहचै अतीत हुतो, तैसे निरभेद अब भेद कोन कहेगो ॥ दीसे कर्म रहित सहित सुख समाधान, पायो निज-थान फिर बाहिर न वहेगो ॥ कबहूं कदाचि अपनो स्वभाव त्यागि करि, राग रस राचिके न पर वस्तु गहेगो ॥ अमलान ज्ञान विद्यमान परगट भयो, याही भांति आगामी अनंत काल रहेगो ॥ १०७ ॥

३१ सा—जबहीते चेतन विभावसों उलटी आप, समे पाय अपनो स्वभाव गहि लीनो है ॥ तबहीते जो जो लेने योग्य सोसो सब लीनो, जो जो त्याग योग्य सोसो सब: छांडि दीनो है ॥ लेवेको न रही ठोर त्यागवेकों नाहिं और, बाकी कहां उवर्‍यो जु कारज नवीनो हैं ॥ संगत्यागि अंगत्यागि, वचन तरंग त्यागि, मन त्यागि बुद्धित्यागि आपा शुद्ध कीनो है ॥ १०८ ॥

शुद्ध ज्ञानके देह नहिं, मुद्रा भेष न कोय ॥
ताते कारण मोक्षको द्रव्यलिंग नहिं होय ॥ १०९ ॥

द्रव्यलिंग न्यारो प्रगट, कला वचन विज्ञान ।
अष्ट रिद्धि अष्ट सिद्धि, एहूं होइ न ज्ञान ॥ ११० ॥

३१ सा—भेपमें न ज्ञान नहि ज्ञान वर्तनमें, मंत्रजंत्रगुरू तंत्रमे न ज्ञानकी कहानी है ॥ ग्रंथमें न ज्ञान नहीं ज्ञान कवि चातुरीमें, वातनिमें ज्ञान नहीं ज्ञान कहा वानी है ॥ ताते भेप गुरुता कवित्त ग्रंथ मंत्र वात इनीते अतीत ज्ञान चेतना निशानी है ॥ ज्ञानहीमें ज्ञान नहीं ज्ञान और ठोर कहूं, जाके घट ज्ञान सोही ज्ञानकी निदानी है ॥ १११ ॥

भेष धरि लोकनिको वंचे सो धरम ठग, गुरू मो कहावें गुरुवाई जाके चाहिये ॥ मंत्र तंत्र साधक कहावे गुणी जादूगीर, पंडित कहावे पंडिताई जामें लहिये ॥ कवित्तकी कलामें प्रवीण सो कहावे कवि, बात कहि जाने सो पवारगीर कहिये ॥ एते सब विषैके भिकारी मायाधारी जीव, इनकों विलोकिके दयालरूप रहिये ॥ ११२ ॥

जो दयालका भाव सो; प्रगट ज्ञानको अंग ।
पै तथापि अनुभौ दशा वरते विगत तरंग ॥ ११३ ॥
दर्शन ज्ञान चरण दशा, करे एक जो कोई ॥
स्थिर व्है साधे मोक्षमग; सुधी अनुभवी सोई ॥ ११४ ॥

३१ सा—कोई दृग ज्ञान चरणातममें बैठि ठोर, भयो निरदोस पर वस्तुको न परसे ॥ शुद्धता विचारे ध्यावे शुद्धतासे केलि करे, शुद्धतामें थिर व्हे अमृत धारा वरसे ॥ त्यागि तन कष्ट व्है सपष्ट अष्ट करमको, करि थान भ्रष्ट नष्ट करे और करसे ॥ सोई विकलप विजय अलप मांहि, त्यागि भौ विधान निरवाण पद दरसे ॥ ११५ ॥

गुण पर्यायमें दृष्टि न दिजे । निर्विकल्प अनुभव रस पीजे ॥
आप समाइ आपमें लीजे । तनुपा मेटि अपनपो कीजे ॥ ११६ ॥

तज विभाव हूजे मगन, शुद्धातम पद मांहि ।
एक मोक्षमारग यहै, और दूसरो नांहि ॥ ११७ ॥

३१ सा—केई मिथ्यादृष्टि जीव धरे जिन मुद्रा भेष, क्रियामें मगन रहे कहे हम यती है ॥ अतुल अखंड मल रहित सदा उद्योत, ऐसे ज्ञान भावसों विमुख मूढमती है ॥ आगम संभाले दोष टालें व्यवहार भाले, पाले व्रत यद्यपि तथापि अविरती है ॥ आपको कहावे मोक्ष मारगके अधिकारी, मोक्षसे सदैव रुष्ट दुष्ट दुरगती है ॥ ११८ ॥

जैसे मुगध धान पहिचाने । तुष तंदुलको भेद न जाने ॥
तैसे मूढमती व्यवहारी । लखे न बंध मोक्ष विधि न्यारी ॥ ११९ ॥

जे व्यवहारी मूढ नर, पर्यय बुद्धी जीव ।
तिनके बाह्य क्रियाहिको, है अवलंब सदीव ॥ १२० ॥
कुमति बाहिज दृष्टिसो, बाहिज क्रिया करंत ।
माने मोक्ष परंपरा, मनमें हरष धरंत ॥ १२१ ॥
शुद्धतम अनुभौ कथा, कहे समकिती कोय ।
सो सुनिके तासो कहे, यह शिवपंथ न होय ॥ १२२ ॥

कवित्त—जिन्हके देह बुद्धि घट अंतर, मुनि मुद्रा धरि क्रिया प्रमाणहि ॥ ते हिय अंध बंधके करता, परम तत्वको भेद न जानहि ॥ जिन्हके हिये सुमतिकी कणिका, बाहिज क्रिया भेष परमाणहि ॥ ते समकिती मोक्ष मारग सुख, करि प्रस्थान भवस्थिति भानहि ॥ १२३ ॥

३१ सा—आचारज कहे जिन वचनको विसतार, अगम अपार है कहेंगे हम कितनो ॥ बहुत बोलवेसों न मकसूद चुप्प भलो, बोलियेसों वचन प्रयोजन है जितनो ॥ नानारूप जल्पनसों नाना विकल्प उठे, तातें जेतो कारिज कथन भलो तितनो ॥ शुद्ध परमातमाको अनुभौ अभ्यास कीजे, येही मोक्ष पंथ परमारथ है इतनो ॥ १२४ ॥

शुद्धातम अनुभौ क्रिया, शुद्ध ज्ञान दृग दोर ।
मुक्ति पंथ साधन वहै, वागजाल सब और ॥ १२५ ॥
जगत चक्षु आनंदमय, ज्ञान चेतना भास ।
निर्विकल्प शाश्वत सुथिर, कीजे अनुभौ तास ॥ १२६ ॥
अचल अखंडित ज्ञानमय, पूरण वीत ममत्व ।
ज्ञानगम्य बाधा रहित, सो है आतम तत्व ॥ १२७ ॥
सर्व विशुद्धी द्वार यह, कह्यो प्रगट शिवपंथ ।
कुंदकुंद मुनिराजकृत, पूरण भयो जु ग्रंथ ॥ १२८ ॥
चौपाई—कुंदकुंद मुनिराज प्रवीणा । तिन यह ग्रंथ कीना इहालो ।
गाथा बद्धसों प्राकृत वाणी । गुरु परंपरा रीत वखाणी ॥ १२९ ॥
भयो ग्रंथ जगमें विख्याता । सुनत महा सुख पावहि ज्ञाता ॥
जे नव रस जगमांहि वखाने । ते सब समयसार रस माने ॥ १३० ।
प्रगटरूप संसारमें, नव रस नाटक होय ।
नव रस गर्भित ज्ञानमें, विरला जाणो कोय ॥ १३१ ॥
कवित्त—प्रथम श्रृंगार वीर दूजो रस, तीजो रस करुणा सुखदायक।
हास्य चतुर्थ रुद्र रस पंचम, छट्ठम रस बीभत्स विभायक ॥

सप्तम भय अष्टम रस अद्भुत, नवमो शांत रसनिको नायक ॥
ये नव रस येई नव नाटक, जो जहां मग्न सोही तिहि लायक ॥ ४ ॥

३१ सा—शोभामें शृंगार वसे वीर पुरुषारथमें, कोमल हियेमें करुणा रस वखानिये ॥ आनंदमें हास्य रुंड मुंडमें विराजे रुद्र, बीभत्स तहां जहां गिलानि मन आनिये ॥ चिंतामें भयानक अथाहतामें अद्भुत मायाकी अरुचि तामे शांत रस मानिये ॥ येई नव रस भवरूप येई भावरूप, इनिको विलक्षण सुदृष्टि जगे जानिये ॥ ५ ॥

छप्पै छंद—गुण विचार शृंगार, वीर उद्यम उदार रुख । करुणा रस सम रीति, हास्य हिरदे उच्छाह सुख । अष्ट करम दल मलन, रुद्र वर्त्ते तिहि थानक । तन विलक्ष बीभत्स, द्वंद दुख दशा भयानक । अद्भुत अनंत वल चिंतवन, शांत सहज वैराग्य ध्रुव । नव रस विलास प्रकाश तव, जव सुवोध घट प्रगट हुव ॥ ६ ॥

चौपाई—जव सुवोध घटमें प्रकाशे । तव रस विरस विषमता नासे ।
नव रस लखे एक रस मांही ताते विरस भाव मिटि जांही ॥ ७ ॥

सव रस गर्भित मूल रस, नाटक नाम गरंथ ।
जाके सुनत प्रमाण जिय, समुझे पंथ कुपंथ ॥ ८ ॥

चौपाई—वरते ग्रंथ जगत हित काजा । प्रगटे अमृतचंद मुनिराजा ॥
तव तिन ग्रंथ जानि अति नीका । रची वनाई संस्कृत टीका ॥ ९ ॥

सर्व विशुद्धि द्वारलों, आये करत वखान ।
तव आचारज भक्तिसों, करे ग्रंथ गुण गान ॥ १० ॥

॥ इति श्रीकुंदकुंदाचार्यानुसार समयसार नाटक समाप्त ॥

अथ श्रीसमयसार नाटकको एकादशमो स्याद्वाद द्वार प्रारंभ ॥ ११ ॥

चौपाई—अद्भुत ग्रंथ अध्यातम वाणी । समुझे कोई विरला प्राणी ॥
यामें स्यादवाद अधिकारा । ताको जो कीजे विसतारा ॥ १ ॥
तोजु ग्रंथ अति शोभा पावे । वह मंदिर यह कलश कहावे ॥
तब चित अमृत वचन गढ खोले । अमृतचंद्र आचारज बोले ॥ २ ॥

कुंदकुंद नाटक विषें, कह्यो द्रव्य अधिकार ।
स्याद्वाद नै साधि मैं, कहूं अवस्था द्वार ॥ ३ ॥
कहूं मुक्ति पदकी कथा, कहूं मुक्तिको पंथ ।
जैसे घृतकारिज जहां, तहां कारण दधि मंथ ॥ ४ ॥

चौपाई—अमृतचंद्र बोले मृदुवाणी । स्यादवादकी सुनो कहानी ॥
कोऊ कहे जीव जग मांही । कोऊ कहे जीव है नाहीं ॥ ५ ॥

एकरूप कोऊ कहे, कोऊ अगणित अंग ।
क्षणभंगुर कोऊ कहे, कोऊ कहे अभंग ॥ ६ ॥
नय अनंत इहविधी है, मिले न काहूं कोय ।
जो सब नय साधन करे, स्याद्वाद है सोय ॥ ७ ॥
स्याद्वाद अधिकार अब, कहूं जैनका मूल ।
जाके जाने जगत जन, लहे जगत जल कूल ॥ ८ ॥

३१ सा—शिष्य कहे स्वामी जीव स्वाधीनकी पराधीन, जीव एक है कीधो अनेक मानि लीजिये ॥ जीव है सदीवकी नांही है जगत मांहि;

जीव अविनश्वरकी विनश्वर कहीजिये ॥ सद्गुरु कहे जीव है सदैव निजाधीन, एक अविनश्वर दरव दृष्टि दीजिये ॥ जीव पराधीन क्षणभंगुर अनेक रूप, नांहि जहां तहां पर्याय प्रमाण कीजिये ॥ ९ ॥

३१ सा--द्रव्य क्षेत्र काल भाव चारों भेद वस्तुहीमें, अपने चतुष्क वस्तु अस्तिरूप मानिये ॥ परके चतुष्क वस्तु न अस्ति नियत अंग, ताको भेद द्रव्य परयाय मध्य जानिये ॥ दरव जो वस्तु क्षेत्र सत्ता भूमि काल चाल, स्वभाव सहज मूल सकति वखानिये ॥ याही भांति पर विकल्प बुद्धि कलपना, व्यवहार दृष्टि अंश भेद परमानिये ॥ १० ॥

है नांहि नांहिसु है, है है नांहीं नांहि ।
ये सर्वंगी नय धनी, सब माने सब मांहि ॥ ११ ॥

३१ सा---ज्ञानको कारण ज्ञेय आतमा त्रिलोक मय, ज्ञेयसों अनेक ज्ञान मेल ज्ञेय छांही है ॥ जोलों ज्ञेय तोलों ज्ञान सर्व द्रव्यमें विज्ञान, ज्ञेय क्षेत्र मान ज्ञान जीव वस्तु नांही है ॥ देह नसे जीव नसे देह उपजत लसे, आतमा अचेतन है सत्ता अंश मांही है ॥ जीव क्षण भंगुर अज्ञेयक स्वरूपी ज्ञान, ऐसी ऐसी एकांत अवस्था मूढ पांही है ॥ १२ ॥

कोउ मूढ कहे जैसे प्रथम सावारि भीति, पीछे ताके उपरि सुचित्र आछ्यो लेखिये ॥ तैसे मूल कारण प्रगट घट पट जैसो, तैसो तहां ज्ञानरूप कारिज विसेखिये ॥ ज्ञानी कहे जैसी वस्तु तैसाहीं स्वभाव ताको, ताते ज्ञान ज्ञेय भिन्न भिन्न पद पेखिये ॥ कारण कारिज दोउ एकहीमें निश्चय पै, तेरो मत साचो व्यवहार दृष्टि देखिये ॥ १३ ॥

कोउ मिथ्यामति लोकालोक व्यापि ज्ञान मानि, समझे त्रिलोक पिंड

आतम दरव है ॥ याहीते स्वछंद भयो डोले मुखहू न बोले, कहे या जगतमें हमारोही परव है ॥ तासों ज्ञाता कहे जीव जगतसों भिन्न है पै, जगसों विकाशी तोहि याहीते गरव है ॥ जो वस्तु सो वस्तु पररूपसों निराली सदा, निहचे प्रमाण स्यादवादमें सरव है ॥ १४ ॥

कोउ पशु ज्ञानकी अनंत विचित्रता देखि, ज्ञेयको आकार नानारूप विसतर्‍यो है ॥ ताहिको विचारी कहे ज्ञानकी अनेक सत्ता, गहिके एकांत पक्ष लोकनिसो लर्‍यो है ॥ ताको भ्रम भंजिवेकों ज्ञानवंत कहे ज्ञान, अगम अगाध निराबाध रस भर्‍यो है ॥ ज्ञायक स्वभाव परयायसों अनेक भयो, यद्यपि तथापि एकतासों नहिं टर्‍यो है ॥ १५ ॥

कोउ कुधी कहे ज्ञानमाहि ज्ञेयको आकार, प्रति भासि रह्यो है कलंक ताहि धोइये ॥ जब ध्यान जलसों पखारिके धवल कीजे, तव निराकार शुद्ध ज्ञानमई होईये ॥ तासों स्यादवादी कहे ज्ञानको स्वभाव यहे, ज्ञेयको आकार वस्तु मांहि कहां खोइये ॥ जैसे नानारूप प्रतिबिंबकी झलक दीखे, यद्यपि तथापि आरसी विमल जोइये ॥ १६ ॥

कोउ अज्ञ कहे ज्ञेयाकार ज्ञान परिणाम, जोलों विद्यमान तोलों ज्ञान परगट है ॥ ज्ञेयके विनाश होत ज्ञानको विनाश होय, ऐसी वाके हिरदे मिथ्यातकी अटल है ॥ तासूं समकितवंत कहे अनुभौ कहानि, पर्याय प्रमाण ज्ञान नानाकार नट है ॥ निरविकलप अविनश्वर दरवरूप, ज्ञान ज्ञेय वस्तुसों अव्यापक अघट है ॥ १७ ॥

कोउ मंद कहे धर्म अधर्म आकाश काल, पुदगल जीव सब मेरो रूप जगमें ॥ जानेना मरम निज माने आपा पर वस्तु, बांधे दृढ करम धरम खोवे

डगमें ॥ समकिती जीव शुद्ध अनुभौ अभ्यासे ताते, परको ममत्व त्यागि करे पगपगमें ॥ अपने स्वभावमें मगन रहे आठो जाम, धारावाही पंथिक कहावे मोक्ष मगमें ॥ १८ ॥

कोऊ सठ कहे जेतो ज्ञेयरूप परमाण, तेतो ज्ञान ताते कछु अधिक न और है ॥ तिहुं काल परक्षेत्र व्यापि परणम्यो माने, आपा न पिछाने ऐसी मिथ्यादृग दोर है ॥ जैनमती कहे जीव सत्ता परमाण ज्ञान, ज्ञेयसों अव्यापक जगत सिरमोर है ॥ ज्ञानके प्रभामें प्रतिबिंबित अनेक ज्ञेय, यद्यपि तथापि थिति न्यारी न्यारी ठोर है ॥ १९ ॥

कोउ शुन्यवादी कहे ज्ञेयके विनाश होत, ज्ञानको विनाश होय कहो कैसे जीजिये ॥ ताते जीवितव्य ताकी थिरता निमित्त सब, ज्ञेयाकार परिणामनिको नाश कीजिये ॥ सत्यवादी कहे भैया हूजे नांहि खेद खिन्न, ज्ञेयसो विरचि ज्ञान भिन्न मानि लीजिये ॥ ज्ञानकी शकति साधि अनुभौं दशा अराधि, करमकों त्यागिके परम रस पीजिये ॥ २० ॥

कोऊ क्रूर कहे काया जीव दोउ एक पिंड, जब देह नसेगी तबही जीव मरेगो ॥ छाया कोसो छल कीधो माया कोसो परपंच, कायामें समाइ फिरि कायाकों न धरेगो ॥ सुधी कहे देहसों अव्यापक सदैव जीव, समै पाय परको ममत्व परिहरेगो ॥ अपने स्वभाव आइ धारणा धरामें धाइ, आपमें मगन व्हैके आप शुद्ध करेगो ॥ २१ ॥

ज्यों तन कंचुकि त्यागसे, बिनसे नांहि भुजंग ।
त्यों शरीरके नाशते, अलख अखंडित अंग ॥ २२ ॥

३१ सा—कोउ दुरबुद्धि कहे पहिले न हूतो जीव, देह उपजत उपज्यो है जब आइके ॥ जोलों देह तोलों देह धारी फिर देह नसे, रहेगो

अलख ज्योतिमें ज्योति समाइके ॥ सद्‌बुद्धी कहे जीव अनादिको देहधारि, जब ज्ञानी होयगो कबही काल पायके ॥ तबहीसों पर तजि अपनो स्वरूप भजि, पावेगो परम पद करम नसायके ॥ २३ ॥

कोउ पक्षपाती जीव कहे ज्ञेयके आकार, परिणयो ज्ञान ताते चेतना असत है ॥ ज्ञेयके नसत चेतनाको नाश ता कारण, आतमा अचेतन त्रिकाल मेरे मत है ॥ पंडित कहत ज्ञान सहज अखंडित है, ज्ञेयको आकार धरे ज्ञेयसों विरत है ॥ चेतनाके नाश होत सत्ताको विनाश होय, याते ज्ञान चेतना प्रमाण जीव सत है ॥ २४ ॥

कोउ महा मूरख कहत एक पिंड मांहि, जहांलों अचित्त चित्त अंग लह लहे है ॥ जोगरूप भोगरूप नानाकार ज्ञेयरूप, जेते भेद करमके तेते जीव कहे है ॥ मतिमान कहे एक पिंड मांहि एक जीव, ताहीके अनंत भाव अंश फैलि रहे है ॥ पुद्गलसों भिन्न कर्म जोगसों अखिन्न सदा, उपजे विनसे थिरता स्वभाव गहे है ॥ २५ ॥

कोउ एक क्षणवादी कहे एक पिंड मांहि, एक जीव उपजत एक विनसत है ॥ जाही समै अंतर नवीन उतपति होय, ताही समै प्रथम पुरातन वसत है ॥ सरवांगवादी कहे जैसे जल वस्तु एक, सोही जल विविध तरंगण लसत है ॥ तैसे एक आतम दरब गुण पर्यायसे, अनेक भयो पै एक रूप दरसत है ॥ २६ ॥

कोउ बालबुद्धि कहे ज्ञायक शकति जोलों, तोलों ज्ञान अशुद्ध जगत मध्य जानिये ॥ ज्ञायक शकति काल पाय मिटिजाय जब, तब अविरोध बोध विमल वखानिये ॥ परम प्रवीण कहे ऐसी तो न बने बात, जैसे

विन परकाश सूरज न मानिये ॥ तैसे विन ज्ञापक शकति न कहावे ज्ञान, यंह तो न पक्ष परतक्ष परमानिये ॥ २७ ॥

इहि विधि आतम ज्ञान हित, स्याद्‌वाद परमाण ।
जाके वचन विचारसों, मूरख होय सुजान ॥ २८ ॥
स्याद्‌वाद आतम दशा, ता कारण बलवान ।
शिव साधक बाधा रहित, अखै अखंडित आन ॥ २९ ॥

जोइ जीव वस्तु अस्ति प्रमेय अगुरु लघु, अभोगी अमूरतकि परदेशावंत है ॥ उतपत्तिरूप नाशरूप अविचल रूप, रतनत्रयादिगुण भेदसों अनंत है ॥ सोई जीव दरव प्रमाण सदा एक रूप, ऐसे शुद्ध निश्चय स्वभाव विरतंत है ॥ स्याद्‌वाद मांहि साध्यपद अधिकार कह्यो, अब आगे कहिवेको साधक सिद्धंत है ॥ ३० ॥

स्याद्वाद अधिकार यह, कह्यो अलप विस्तार ।
अमृतचंद्र मुनिवर कहे, साधक साध्य दुवार ॥ ३१ ॥

॥ इति श्रीसमयसार नाटकको ग्यारहमो स्याद्वाद नयद्वार समाप्त भयो ॥ ११ ॥

॥ अथ बारहमो साध्य साधक द्वार प्रारंभ ॥ १२॥

साध्य शुद्ध केवल दशा, अथवा सिद्ध महंत ।
साधक अविरत आदि बुध, क्षीण मोह परयंत ॥ १ ॥

३१ सा—जाको आधो अपूरव अनिवृत्ति करणको, भयो लाभ हुई गुरु वचनकी वोहनी ॥ जाको अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ, अनादि मिथ्यात्व मिश्र समकित मोहनी ॥ सातों परकति क्षपि किंवा उमशमी जाके, जगि उर मांहि समकित कला सोहनी ॥ सोई मोक्षसाधक कहा-यो ताके सरवंग, प्रगटी शकति गुण स्थानक आरोहनी ॥ २ ॥

सोरठा—जाके मुक्ति समीप, भई भव स्थिति घट गई।
ताकी मनसा सीप, सुगुरु मेघ मुक्ता वचन ॥ ३ ॥

ज्यों वर्षे वर्षा समें, मेघ अखंडित धार।
त्यों सद्गुरु वाणी खिरे, जगत जीव हितकार ॥ ४ ॥

२३ सा—चेतनजी तुम जागि विलोकहु, लागि रहे कहां मायाके तांई ॥
आये कहीसों कही तुम जाहुंगे, माया रहेगी जहांके तहांई ॥
माया तुमारी न जाति न पांति न, वंशकी वेलि न अंशकी झांई ॥
दासि किये विन लातनि मारत, ऐसी अनीति न कीजे गुसांई ॥ ५ ॥

माया छाया एक हैं, घटे बढ़े छिन मांहि।
इनक संगति जे लगे, तिन्हे कहूं सुख नांहि ॥ ६ ॥

२३ सा—लोकनिसों कछु नांतो न तेरो, न तोसों कछू इह लोकको नांतो ॥
ते तो रहे रमि स्वारथके रस, तूं परमरथके रस मांतो ॥
ये तनसों तनमें तनसे जड़, चेतन तूं तनसों निति हांतो ॥
होहुं सुखी अपनो वल फेरिके, तोरिके राग विरोधको तांतो ॥ ७ ॥

सोरठा—जे दुर्बुद्धी जीव, ते उत्तंग पदवी चहे।
जे सम रसी सदीव, तिनको कछू न चाहिये ॥ ८ ॥

३१ सा—हांसीमें विषाद वसे विद्यामें विवाद वसे, कायामें मरण गुरु वर्तनमें हीनता ॥ शुचिमें गिलानि वसे प्रापतीमें हानि वसे, जैमें हारि सुंदर दशामें छबि छीनता ॥ रोग वसे भोगमें संयोगमें वियोग वसे, गुणमें गरव वसे सेवा मांहि दीनता ॥ और जग रीत जेती गर्भित असता तेति, साताकी सहेली है अकेली उदासीनता ॥ ९ ॥

जो उत्तंग चढि फिर पतन, नहि उत्तंग वह कूप ।
जो सुख अंतर भय वसे, सो सुख है दुखरूप ॥ १० ॥
जो विलसे सुख संपदा, गये तहां दुख होय ।
जो धरती बहु तृणवती, जरे अग्निसे सोय ॥ ११ ॥
शब्दमांहि सद्गुरु कहे, प्रगटरूप निजधर्म ।
सुनत विचक्षण श्रद्दहे, मूढ न जाने मर्म ॥ १२ ॥

३१ सा—जैसे काहू नगरके वासी द्वै पुरुष भूले, तामें एक नर सुष्ट एक दुष्ट उरको ॥ दोउ फिरे पुरके समीप परे कुवटमें, काहू और पंथिककों पूछे पंथ पूरको ॥ सो तो कहे तुमारो नगर ये तुमारे ढिग, मारग दिखावे समझावे खोज पुरको ॥ एते पर सुष्ट पहचाने पै न माने दुष्ट, हिंरदे प्रमाण तैसे उपदेश गुरुको ॥ १३ ॥

जैसे काहूं जंगलमें पावसकि समें पाई, कपने सुभाय महा मेघ वरखत है ॥ आमल कषाय कटु तीक्षण मधुर क्षार, तैसा रस वाढे जहां जैसा दरखत है ॥ तैसे ज्ञानवंत नर ज्ञानको वखान करे, रस कोउ माही है न कोउ परखत है ॥ वोही धूनि सूनि कोउ गहे कोउ रहे सोइ, काहूको विषाद होइ कोउ हरखत है ॥ १४ ॥

गुरु उपदेश कहां करे, दुराराध्य संसार ।
वसे सदा जाके उदर, जीव पंच परकार ॥ १५ ॥
डुंघा प्रभु चूंघा चतुर, सूंघा रूचक शुद्ध ।
ऊंघा दुर्बुद्धी विकल, घूंगा घोर अबुद्ध ॥ १६ ॥
जाके परम दशा विषे, कर्म कलंक न होय ।
डूंघा अगम अगाधपद, वचन अगोचर सोय ॥ १७ ॥
जो उदास व्है जगतसों, गहे परम रस प्रेम ।
सो चूंघा गुरूके वचन, चूंघे बालक जेम ॥ १८ ॥
जो सुवचन रुचिसों सुने, हिये दुष्टता नांहि ।
परमारथ समुझे नहीं, सो सूंघा जगमांहि ॥ १९ ॥
जाको विकथा हित लगे, आगम अंग अनिष्ट ।
सो विषयी दुखसे विकल, दुष्ट रुष्ट पापिष्ट ॥ २० ॥
जाके वचन श्रवण नहीं, नहिं मन सुरति विराम ।
जड़तासो जड़वत भयो, घूंघा ताको नाम ॥ २१ ॥
चौपाई—डूंघा सिद्ध कहे सब कोऊ । सूंघा ऊंघा मूरख दोऊ ॥
घूंघा घोर विकल संसारी । चूंघा जीव मोक्ष अधिकारी ॥ २२ ॥
चूंघा साधक मोक्षको, करे दोष दुख नाश ।
लहे पोष संतोषसों, वरनों लक्षण तास ॥ २३ ॥
कृपा प्रशम संवेग दम, अस्ति भाव वैराग ।
ये लक्षण जाके हिये, सप्त व्यसनको त्याग ॥ २४ ॥
चौपाई—जूवा आमिष मदिरा दारी आखेटक चोरी परनारी ॥
येई सप्त व्यसन दुखदाई । दुरित मूल दुर्गतिके भाई ॥ २५ ॥

दर्वित ये सातों व्यसन, दुराचार दुख धाम ।
भावित अंतर कल्पना, मृषा मोह परिणाम ॥ २६ ॥

३१ सा—अशुभमें हारि शुभ जीति यहै द्युत कर्म, देहकी मगन ताई यहै मांस भखिवो॥ मोहकी गहलसों अजान यहै सुरा पान, कुमतीकी रीत गणिकाको रस चखिवो॥ निर्दय व्है प्राण घात करवो यहै सिकार, पर नारी संग पर बुद्धिको परखिवो ॥ प्यारसों पराई सोंज गहिवेकी चाह चोरी, एई सातों व्यसन विडारे ब्रह्म लखिवो ॥ २७ ॥

व्यसन भाव जामें नहीं, पौरुष अगम अपार ।
किये प्रगट घट सिंधुमें, चौदह रत्न उदार ॥ २८ ॥

३१ सा—लछमी सुबुद्धि अनुभूति कउस्तुभ मणि, वैराग्य कल्प वृक्ष शंख सु वचन है ॥ ऐरावति उद्यम प्रतीति रंभा उदै विष; कामधेनु निर्जरा सुधा प्रमोद घन है ॥ ध्यान चाप प्रेम रीत मदिरा विवेक वैद्य, शुद्ध भाव चंद्रमा तुरंगरूप मन है ॥ चौदह रतन ये प्रगट होय जहां तहां, ज्ञानके उद्योत घट सिंधुको मथन है ॥ २९ ॥

किये अवस्थामें प्रगट, चौदह रत्न रसाल ।
कछु त्यागे कछु संग्रहे, विधि निषेधकी चाल ॥ ३० ॥
रमा शंक विष धनु सुरा, वैद्य धेनु हय हेय ।
मणि शंक गज कलप तरु, सुधा सोम आदेय ॥ ३१ ॥
इह विधि जो परभाव विष, वमे रमे निजरूप ।
सो साधक शिव पंथको, चिद्विवेक चिद्रूप ॥ ३२ ॥

कवित्त—ज्ञानदृष्टि जिन्हके घट अंतर, निरखे द्रव्य सुगुण परजाय ॥
जिन्हके सहज रूप दिन दिन प्रति, स्याद्वाद साधन अधिकाय ॥
जे केवली प्रणित मारग मुख, चित्त चरण राखे ठहराय ॥
ते प्रवीण करि क्षीण मोह मल, अविचल होंहि परम पद पाय ॥ ३३ ॥

३१ सा—चांकसो फिरत जाको संसार निकट आयो, पायो जिन्हे सम्यक् मिथ्यात्म नाश करिके ॥ निरद्वंद मनसा सुभूमि साधि लीनी जिन्हे, किनी मोक्ष कारण अवस्था ध्यान धरिके ॥ सोही शुद्ध अनुभौ अभ्यासी अविनासी भयो, गयो ताको करम भरम रोग गरिके ॥ मिथ्यामति अपनो स्वरूप न पिछाने ताते, डोले जग जालमें अनंत काल भरिके ॥ ३४ ॥

जे जीव दरवरूप तथा परयायरूप, दोउ नै प्रमाण वस्तु शुद्धता गहत है ॥ जे अशुद्ध भावनिके त्यागी गये सरवथा, विषैसों विमुख व्है विरागता वहत है ॥ जे जे ग्राह्य भाव त्याज्य भाव दोउ भावनिकों, अनुभौ अभ्यास विषें एकता करत है ॥ तेई ज्ञान क्रियाके आराधक सहज मोक्ष, मारगके साधक अबाधक महत है ॥ ३५ ॥

विनसि अनादि अशुद्धता, होइ शुद्धता पोख ।
ता परणतिको बुध कहे, ज्ञानक्रियासों मोख ॥ ३६ ॥
जगी शुद्ध सम्यक् कला, बगी मोक्ष मग जोय ।
वहे कर्म चूरण करे, क्रम क्रम पूरण होय ॥ ३७ ॥
जाके घट ऐसी दशा, साधक ताको नाम ।
जैसे जो दीपक धरे, सो उजियारो धाम ॥ ३८ ॥

३१ सा—जाके घट अंतर मिथ्यात अंधकार गयो, भयो परकाश शुद्ध समकित भानको ॥ जाकी मोह निद्रा घटि ममता पलक फटि, जाणे निज मरम अवाची भगवानको ॥ जाको ज्ञान तेज बग्यो उद्दिम उदार जग्यो, लग्यो सुख पोष समरस सुधा पानको ॥ ताही सुविचक्षणको संसार निकट आयो, पायो तिन मारग सुगम निरवाणको ॥ ३९ ॥

जाके हिरदेमें स्यादवाद साधना करत, शुद्ध आतमको अनुभौ प्रगट भयो है ॥ जाके संकल्प विकलपके विकार मिटि, सदाकाल एक भाव रस परिणयो है ॥ जाते बंध विधि परिहार मोक्ष अंगीकार, ऐसो सुविचार पक्ष सोउ छांडि दियो है ॥ जाकी ज्ञान महिमा उद्योत दिन दिन प्रति, सोही भवसागर उलंघि पार गयो है ॥ ४० ॥

अस्तिरूप नासति अनेक एक थिररूप, अथिर इत्यादि नानारूप जीव कहिये ॥ दीसे एक नयकी प्राति पक्षी अपर दूजी, नैकों न दिखाय वाद विवादमें रहिये ॥ थिरता न होय विकलपकी तरंगनीमें, चंचलता बढे अनुभौ दशा न लहिये ॥ ताते जीव अचल अबाधित अखंड एक, ऐसो पद साधिके समाधि सुख गहिये ॥ ४१ ॥

जैसे एक पाको अम्र फल ताके चार अंश, रस जाली गुठली छिलक जव मानिये ॥ येतो न वने पै ऐसे बने जैसे वह फल, रूप रस गंध फास अखंड प्रमानिये ॥ तैसे एक जीवको दरव क्षेत्र काल भाव, अंश भेद करि भिन्न भिन्न न वखानिये ॥ द्रव्यरूप क्षेत्ररूप कालरूप भावरूप, चारों रूप अलख अखंड सत्ता मानिये ॥ ४२ ॥

कोउ ज्ञानवान कहे ज्ञानतो हमारो रूप, ज्ञेय षट् द्रव्य सों हमारो रूप नाहीं है ॥ एक नै प्रमाण ऐसे दूजी अब कहूं जैसे, सरस्वती अक्षर अरथ एक ठांही है ॥ तैसे ज्ञाता मेरो नाम ज्ञान चेतना विराम, ज्ञेयरूप शकति अनंत मुझ मांहीं है ॥ ता कारण वचनके भेद भेद कहे कोउ, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयको विलास सत्ता मांही है ॥ ४३ ॥

चौ०—स्वपर प्रकाशक शकति हमारी । ताते वचन भेद भ्रम भारी ॥
ज्ञेय दशा द्विविधा परकाशी । निजरूपा पररूपा भासी ॥ ४४ ॥

निजस्वरूप आतम शकति, पर रूप पर वस्त ।
जिन्ह लखिलीनो पेच यह, तिन्ह लखि लियो समस्त ४५

करम अवस्थामें अशुद्ध सों विलोकियत, करम कलंकसों रहित शुद्ध अंग है ॥ उभै नय प्रमाण समकाल शुद्धा शुद्धरूप, ऐसो परयाय धारी जीव नाना रंग है ॥ एकही समैमें त्रिधा रूप पै तथापि याकी, अखंडित चेतना शकति सरवंग है ॥ यहैं स्यादवाद याको भेद स्यादवादी जाने, मूरख न माने जाको हियोदग भंग है ॥ ४६ ॥

निहचे दरव दृष्टि दीजे तब एक रूप, गुण परयाय भेद भावसों बहुत है ॥ असंख्य प्रदेश संयुगत सत्ता परमाण, ज्ञानकी प्रभासों लोकाऽलोकमान जुत है ॥ परजे तरंगनीके अंग छिन भंगुर है, चेतना शकति सों अखंडित अचुत है ॥ सो है जीव जगत विनायक जगत सार, जाकी मौज महिमा अपार अदभुत है ॥ ४७ ॥

विभाव शकति परणतिसों विकल दीसे, शुद्ध चेतना विचार ते सहज संत है ॥ करम संयोगसों कहावे गति जोनि वासि, निहचै स्वरूप सदा

मुकत महंत है ॥ ज्ञायक स्वभाव धरे लोकाऽलोक परकासि, सत्ता परमाण सत्ता परकाशवंत है ॥ सो है जीव जानत जहांन कौतुक महान, जाकी कीरति कहान अनादि अनंत है ॥ ४८ ॥

पंच परकार ज्ञानावरणको नाश करि, प्रगटि प्रसिद्ध जग मांहि जगमगी है ॥ ज्ञायक प्रभामें नाना ज्ञेयकी अवस्था धरि, अनेक भई पै एकताके रस पगी है ॥ याही भांति रहेगी अनादिकाल परयंत, अनंत शकति फेरि अनंतसो लगी है ॥ नर देह देवलमें केवल स्वरूप शुद्ध, ऐसी ज्ञान ज्योतिकी सिखा समाधि जगी है ॥ ४९ ॥

अक्षर अरथमें मगन रहे सदा काल, महा सुख देवा जैसी सेवा काम गविकी ॥ अमल अबाधित अलख गुण गावना है, पावना परम शुद्ध भावना है भविकी ॥ मिथ्यात तिमिर अपहारा वर्धमान धारा, जैसे उभै जामलों किरण दीपे रविकी ॥ ऐसी है अमृतचंद्र कला त्रिधारूप धरे । अनुभव दशा ग्रंथ टीका बुद्धि कविकी ॥ ५० ॥

नाम साध्य साधक कह्यो, द्वार द्वादशम ठीक ।
समयसार नाटक सकल पूरण भयो सटीक ॥ ५१ ॥
अब कवि कुछ पूरव दशा, कहे आपसों आप ।
सहज हर्ष मनमें धरे, करे न पश्चात्ताप ॥ १ ॥

३१ सा—जो मैं आप छांडि दीनो पररूप गहि लीनो, कीनो न वसेरो तहां जहां मेरा स्थल है ॥ भोगनिको भोगि व्है करमको करता भयो, हिरदे हमारे राग द्वेष मोह मल है ॥ ऐसे विपरीत चाल भई जो अतीत काल, सो तो मेरे क्रियाकी ममता ताको फल है ॥ ज्ञानदृष्टि भासी

भयो क्रियासों उदासी वह, मिथ्या मोह निद्रामें सुपनकोसो छल है ॥ २

अमृतचंद्र मुनिराजकृत, पूरण भयो गरंथ ।
समयसार नाटक प्रगट, पंचम गति को पंथ ॥ ३ ॥

॥ इति श्रीअमृतचंद्राचार्यानुसार समयसार नाटक समाप्त ॥

चौपाई—जिन प्रतिमा जन दोष निकंदे। सीस नमाइ बनारसि वंदे।
फिरि मन मांहि विचारी ऐसा । नाटक ग्रंथ परम पद जैसा ॥ १ ॥
परम तत्व परिचै इस मांही । गुण स्थानककी रचना नांही ॥
यामें गुण स्थानक रस आवे । तो गरंथ अति शोभा पावे ॥ २ ॥

चतुर्दश गुणस्थानाधिकार प्रारंभ॥

जिन प्रतिमा जिन सारखी, नमै बनारसि ताहि ॥
जाके भक्ति प्रभावसो, कीनो ग्रंथ निवाहि ॥ १ ॥

३१ सा—जाके मुख दरससों भगतके नैन नीकों, थिरताकी बढे चंचलता विनसी ॥ मुद्रा देखें केवलीकी मुद्रा याद आवे जहां, आगे इंद्रकी विभूति दीसे तिनसी ॥ जाको जस जपत प्रकाश जगे हिरदेमें, सोइ शुद्ध मति होइ हुति जो मलिनसी ॥ कहत बनारसी सुमहिमा जाकी, सो है जिनकी छवि सु विद्यमान जिनसी ॥ २ ॥

३१ सा—जाके उर अंतर सुदृष्टिकी लहर लसि, विनसी मोह निद्राकी ममारखी ॥ सैलि जिन शासनकी फैलि जाके घट भयो, गरवको त्यागि षट दरवको पारखी ॥ आगमके अक्षर परे है जाके

हिरदे भंडारमें समानि वाणि आरखी ॥ कहत बनारसी अलप भव थिती जाकी, सोई जिन प्रतिमा प्रमाणे जिन सारखी ॥ ३ ॥

यह विचारि संक्षेपसों, गुण स्थानक रस चोज ।
वर्णन करे बनारसी, कारण शिव पथ खोज ॥ ६ ॥

नियत एक व्यवहारसों, जीव चतुर्दश भेद ।
रंग योग बहु विधि भयो, ज्यों पट सहज सुपेद ॥ ७ ॥

३१ सा—प्रथम मिथ्यात दूजो सासादन तीजो मिश्र, चतुरथ अव्रत पंचमो व्रत रंच है ॥ छठो परमत्त नाम, सातमो अपरमत नाम आठमो अपूरव करण सुख संच है ॥ नौमो अनिवृत्तिभाव दशम सुक्षम लोभ, एकादशमो सु उपशांत मोह वंच है ॥ द्वादशमो क्षीण मोह तेरहो संयोगी जिन चौदमो अयोगी जाकी थिती अंक पंच है ॥ ८ ॥

बरने सब गुणस्थानके, नाम चतुर्दश सार ।
अब वरनों मिथ्यातके, भेद पंच परकार ॥ ९ ॥

३१ सा—प्रथम एकांत नाम मिथ्यात्व अभिग्रहीक, दूजो विपरीत अभिनिवेसिक गोत है ॥ तीजो विनै मिथ्यात्व अनाभिग्रहे नाम जाको, चौथो संशै जहां चित्त भोर कोसो पोत है ॥ पांचमो अज्ञान अनाभोगिक गहल रूप, जाके उदै चेतन अचेतनसा होत है ॥ येई पांचौं मिथ्यात्व जीवको जगमें भ्रमावे, इनको विनाश समकीतको उदोत है ॥ १० ॥

जो एकांत नय पक्ष गहि, छके कहावे दक्ष ।
सो इकंत वादी पुरुष, मृषावंत परतक्ष ॥ ११ ॥

ग्रंथ उकति पथ ऊथपे, थापे कुमत स्वकीय ।
सुजस हेतु गुरुता गहे, सो विपरीती जीय ॥ १२ ॥
देव कुदेव सुगुरु कुगुरु, गिने समानजु कोय ।
नमै भक्तिसु सवनकूं, विनै मिथ्यात्वी सोय ॥ १३ ॥
जो नाना विकलप गहे, रहे हिये हैरान ।
थिर व्है तत्व न सद्दहे, सो जिय संशयवान ॥ १४ ॥
जाको तन दुख दहलसें, सुरति होत नहिं रंच ।
गहेरूप वर्ते सदा, सो अज्ञान तिर्यंच ॥ १५ ॥
पंच भेद मिथ्यात्वके, कहे जिनागम जोय ।
सादि अनादि स्वरूप अब, कहूं अवस्था दोय ॥ १६ ॥
जो मिथ्यात्व दल उपसमें, ग्रंथि भेदि बुध होय ।
फिरि आवे मिथ्यात्वमें, सादि मिथ्यात्वी सोय ॥ १७ ॥
जिन्हे ग्रंथि भेदी नहीं, ममता मगन सदीव ।
सो अनादि मिथ्यामती, विकल बहिर्मुख जीव ॥ १८ ॥
कह्या प्रथम गुनस्थान यह, मिथ्यामत अभिधान ।
कलपरूप अब वर्णवूं, सासादन गुणस्थान ॥ १९ ॥

३१ सा—जैसे कोउ क्षुधित पुरुष खाई खीर खांड, वोन करे पीछेके लगार स्वाद पावे है ॥ तैसे चढि चौथे पांचे छठे एक गुणस्थान, काहूं उपशमीकूं कषाय उदै आवे है ॥ ताहि समैं तहांसे गिरे प्रधान दशा त्यागि, मिथ्यात्व अवस्थाको अधोमुख व्है धावे है ॥ बीच एक समै वा छ आवली प्रमाण रहे, सोइ सासादन गुणस्थानक कहावे है ॥ २० ॥

सासादन गुणस्थान यह, भयो समापत बीय।
मिश्रनाम गुणस्थान अब, वर्णन करूं तृतीय ॥ २१ ॥

उपशमि समकीति कैतो सादि मिथ्याम, दुहूंनको मिश्रित मिथ्यात आइ गहे है ॥ अनंतानुबंधी चोकरीको उदै नाहि जामें, मिथ्यात समै प्रकृति मिथ्यात न रहे है ॥ जहां सद्दहन सत्यासत्य रूप सम काल, ज्ञान भाव मिथ्याभाव मिश्र धारा वहे है ॥ याकी थिति अंतर मुहूरत उभयरूप, ऐसो मिश्र गुणस्थान आचारज कहे है ॥ २२ ॥

मिश्रदशा पूरण भई, कही यथामति भावि।
अब चतुर्थ गुणस्थान विधि, कहूं जिनागम साखि ॥२३॥

३१ सा—केई जीव समकीत पाई अर्ध पुद्गल, परावर्तकाल तांई चोखे होई चित्तके ॥ केई एक अंतर महूरतमें गंठि भेदि, मारग उलंघि सुख वेदे मोक्ष वित्तके ॥ ताते अंतर महूरतसों अर्ध पुद्गलों, जेते समै होहि तेते भेद समकितके ॥ जाहि समै जाको जब समकित होइ सोइ, तबहीसों गुण गहे दोप दहे इतके ॥ २४ ॥

अध अपूर्व अनिवृत्ति त्रिक, करण करे जो कोय।
मिथ्या गांठि विदारि गुण, प्रगटे समकित सोय ॥ २५ ॥
समकित उतपति चिन्ह गुण, भूषण दोष विनाश।
अतीचार जुत अष्ट विधि, वरणो विवरण तास ॥ २६ ॥

चौपाई—सत्य प्रतीति अवस्था जाकी। दिन दिन रीति गहे समतांकी ॥ छिन छिन करे सत्यको साको। समकित नाम कहावे ताको ॥२७॥

कैतो सहज स्वभावके, उपदेशे गुरु कोय।
चहुगति सैनी जीवको, सम्यक् दर्शन होय ॥ २८ ॥
आपा परिचे निज विषें, उपजे नहिं संदेह।
सहज प्रपंच रहित दशा, समकित लक्षण एह ॥ २९ ॥
करुणावत्सल सुजनता, आतम निंदा पाठ।
समता भक्ति विरागता, धर्म राग गुण आठ ॥ ३० ॥
चित प्रभावना भावयुत, हेय उपादे वाणि।
धीरज हरप प्रवीणता, भूपण पंच वखाणि ॥ ३१ ॥
अष्ट महामद अष्ट मल, षट आयतन विशेष।
तीन मूढता संयुकत, दोप पचीसों एप ॥ ३२ ॥
जाति लाभ कुल रूप तप, बल विद्या अधिकार।
इनको गर्वजु कीजिये, यह मद अष्ट प्रकार ॥ ३३ ॥
चौपाई—अशंका अस्थिरता वंछा। ममता दृष्टि दशा दुरगंछा ॥
वत्सल रहित दोप पर भाखे। चित प्रभावना मांहि न राखे ॥ ३४ ॥
कुगुरु कुदेव कुधर्म धर, कुगुरु कुदेव कुधर्म।
इनकी करे सराहना, इह षडायतन कर्म ॥ ३५ ॥
देव मूढ गुरु मूढता, धर्म मूढता पोष।
आठ आठ षट् तीन मिलि, ये पचीस सब दोष ॥ ३६ ॥
ज्ञानगर्व मति मंदता, निष्ठुर वचन उदगार।
रुद्रभाव आलस दशा, नाश पंच परकार ॥ ३७ ॥

लोक हास्य भय भोग रुचि, अग्र सोच थिति मेव।
मिथ्या आगमकी भगति, मृषा दर्शनी सेव॥ ३८॥

चौपाई—अतीचार ये पंच प्रकारा। समल करहि समकितकी धारा॥
दूषण भूषण गति अनुसरनी। दशा आठ समकितकी वरनी॥ ३९॥

प्रकृती सातों मोहकी, कहूं जिनागम जोय।
जिन्हका उदै निवारिके, सम्यक दर्शन होय॥ ४०॥

३१ सा—चारित्र मोहकी चार मिथ्यातकी तीन तामें, प्रथम प्रकृति अनंतानुवंधी कोहनी॥ बीजी महा मान रस भीजी मायामयी तीजी, चौथे महा लोभ दशा परिगृह पोहनी॥ पांचवी मिथ्यातमति छटी मिश्र परणति, सातवी समै प्रकृति समकित मोहनी॥ येई षट विंग वनितासी एक कुतियासी, सातो मोह प्रकृति कहावे सत्ता रोहनी॥ ४१॥

सात प्रकृति उपशमहि, जासु सो उपशम मंडित। सात प्रकृति क्षय करन हार, क्षायिक अखंडित। सात मांहि कछु क्षपे, कछु उपशम करि रक्खे। सो क्षयउपशमवंत, मिश्र समकित रस चक्खे। षट् प्रकृति उपशमे वा क्षपे, अथवा क्षय उपशम करे। सातई प्रकृति जाके उदै, सो वेदक समकित धरे॥ ४२॥

क्षयोपशम वर्तै त्रिविधि, वेदक चार प्रकार। क्षायक उपशम जुगल युत, नौधा समकित धार॥ ४३॥ चार क्षपे त्रय उपशमे, पण क्षय उपशम दोय। क्षै षट् उपशम एकयों, क्षयोपशम त्रिक होय॥ ४४॥ जहां चार प्रकृति

क्षपे, द्वै उपशम इक वेद। क्षयोपशम वेदक दशा, तासु प्रथम यह भेद ॥ ४५ ॥ पंच क्षपे एक उपशमे, एक वेद जिह ठौर। सो क्षयोपशम वेदकी, दशा दुतिय यह और ॥ ४६ ॥ क्षय षट् वेदे इक जो, क्षायक वेदक सोय, । षट् उपशम एकविदे, उपशम वेदक होय ॥ ४७ ॥

उपशम क्षायककी दशा, पूरव षट् पदमांहि।
कहि अब पुन रुक्तिके, कारण वरणी नांहि ॥ ४८ ॥
क्षयोपशम वेदकहि क्षै, उपशम समकित चार।
तीन चार इक इक मिलत, सब नव भेद विचार ॥४९॥
अब निश्चै व्यवहार, सामान्य अर विशेष विधि।
कहूं चार परकार, रचना समकित भूमिकी ॥ ५० ॥

३१ सा—मिथ्यामति गंठि भेदि जगी निरमल ज्योति। जोगसो अतीत सो तो निहचै प्रमानिये ॥ वहै दुंद दशासों कहावे जोग मुद्रा धारी। मति श्रुति ज्ञान भेद व्यवहार मानिये ॥ चेतना चिन्ह पहिचानि आपा पर वेदे, पौरुष अलप ताते सामान्य वखानिये ॥ करे भेदाभेदको विचार विसताररूप, हेय ज्ञेय उपादेय सो विशेष जानिये ॥ ५१ ॥

तिथि सागर तेतीस, अंतर्मुहूरत एक वा।
अविरत समकित रीत, यह चतुर्थ गुणस्थान इति ॥
अब वरनू इकवीस गुण, अर बावीस अभक्ष।
जिन्हके संग्रह त्यागसों, शोभे श्रावक पक्ष ॥ ५२ ॥

३१ सा—लज्जावंत दयावंत प्रसंत प्रतीतवंत, पर दोषकों ढकैया पर उपकारी है ॥ सौम्यदृष्टी गुणग्राही गरिष्ट सबकों इष्ट, सिष्ट पक्षी मिष्टवादी दीरघ विचारी है ॥ विशेषज्ञ रसज्ञ कृतज्ञ तज्ञ धरमज्ञ, न दीन न अभिमानी मध्य व्यवहारी है ॥ सहज विनीत पाप क्रियासों अतीत ऐसो, श्रावक पुनीत इकवीस गुणधारी है ॥ ९३ ॥

छंद—ओरा घोरवरा निशि भोजन, बहु बीजा बैंगण संधान ॥ पीपर वर उंवर कठुंवर, पाकर जो फल होय अजान ॥ कंद मूल माटी विष आमिष मधु माखन अरु मदिरा पान ॥ फल अति तुच्छ तुषार चलित रस, जिनमत ये बावीस अखान ॥ ९४ ॥

अब पंचम गुणस्थानकी, रचना वरणूं अल्प ।
जामें एकादश दशा, प्रतिमा नाम विकल्प ॥ ९५ ॥

३१ सा—दर्शन विशुद्ध कारी बारह बिरत धारी । सामायक चारी पर्व प्रोषध विधी वहे ॥ सचित्तको परहारी दिवा अपरस नारी, आठो जाम ब्रह्मचारी निरारंभि व्है रहे । पाप परिग्रह छंडे पापकी न शिक्षा मंडे, कोउ याके निमित्त करे सो वस्तु न गहे ॥ ये ते देव्रतके धरैया समकिती जीव, ग्यारह प्रतिमा तिने भगवंतजी कहे ॥ ९६ ॥

संयम अंश जगे जहां, भोग अरुचि परिणाम ।
उदै प्रतिज्ञाको भयो, प्रतिमा ताका नाम ॥ ९७ ॥
आठ मूल गुण संग्रहे, कुव्यसन क्रिया नहिं होय ।
दर्शन गुण निर्मल करे, दर्शन प्रतिमा सोय ॥ ९८ ॥

पंच अणुव्रत आदरे, तीन गुण व्रत पाल ।
शिक्षाव्रत चारों धरे, यह व्रत प्रतिमा चाल ॥ ५९ ॥
द्रव्य भाव विधि संयुकत, हिये प्रतिज्ञा टेक ।
तजि ममता समता गहे, अंतर्मुहूरत एक ॥ ६० ॥
चौ०—जो अरि मित्र समान विचारे । आरत रौद्र कुध्यान निवारे ॥
संयम संहित भावना भावे । सो सामाइकवंत कहावे ॥ ६१ ॥
प्रथम सामायिककी दशा, चार पहरलों होय ।
अथवा आठ पहरलों, प्रोसह प्रतिमा सोय ॥ ६२ ॥
जो सचित्त भोजन तजे, पीवे प्रासुक नीर ।
सो सचित्त त्यागी पुरुष, पंच प्रतिज्ञा गीर ॥ ६३ ॥
चौ०—जो दिन ब्रह्मचर्य व्रत पाले । तिथि आये निशि दिवस संभाले ॥
गहि नव वाडि करे व्रत रख्या । सो षट् प्रतिमा श्रावक आख्या ॥ ६४ ॥
जो नव वाडि सहित विधि साधे । निशि दिनि ब्रह्मचर्य आराधे ॥
सो सप्तम प्रतिमा धर ज्ञाता । सील शिरोमणी जगत विख्याता ॥ ६५ ॥
तियथल वास प्रेम रुचि निरखन, दे परीछ भाखे मधु वैन ॥
पूरव भोग केलि रस चिंतन । गव्र आहार लेत चित चैन ॥
कारि सुचि तन सिंगार बनावत, तिय परजंक मध्य सुख सैन ॥
मनमथ कथा उदर भरि भोजन, ये नव वाडि कहे जिन वैन ॥ ६६ ॥
जो विवेक विधि आदरे, करे न पापारंभ ।
सो अष्टम प्रतिमा धनी, कुगति विजै रणथंभ ॥ ६७ ॥

चौ०—जो दशधा परिग्रहको त्यागी। सुख संतोष सहित वैरागी ॥
सम रस संचित किंचित ग्राही। सो श्रावक नौ प्रतिमा वाही ॥ ६८ ॥

परका पापारंभको, जो न देइ उपदेश।
सो दशमी प्रतिमा सहित, श्रावक विगत कलेश ॥ ६९ ॥

चौ०—जो स्वच्छंद वरते तजि डेरा। मठ मंडपमें करे वसेरा ॥
उचित आहार उदंड विहारी। सो एकादश प्रतिमा धारी ॥ ७० ॥

एकादश प्रतिमा दशा, कहीं देशव्रत मांहिं।
वही अनुक्रम मूलसों, गहीसु छूटे नांहि ॥ ७१ ॥

षट प्रतिमा ताई जघन्य, मध्यम नव पर्यंत।
उत्कृष्ट दशमी ग्यारवीं, इति प्रतिमा विरतंत ॥ ७२ ॥

चौ०—एक कोटि पूरव गणि लीजे। तामें आठ वरष घटि दीजे ॥
यह उत्कृष्ट काल स्थिति जाकी। अंतर्मुहूर्त जघन्य दशाकी ॥ ७३ ॥

सत्तर लाख किरोड़ मित छप्पन सहज किरोड़।
येते वर्ष मिलायके, पूरह संख्या जोड़ ॥ ७४ ॥

अंतर्मुहूरत द्वै घड़ी, कछुक घाटि उतकिष्ट।
एक समय एकावली, अंतर्मुहूर्त कनिष्ट ॥ ७५ ॥

यह पंचम गुणस्थानकी, रचना कही विचित्र।
अव छठे गुणस्थानकी, दशा कहूं सुन मित्र ॥ ७६ ॥

पंच प्रमाद दशा धरे, अठाइस गुणवान।
स्थाविर कल्प जिन कल्प युत; है प्रमत्त गुणस्थान ॥७७॥

धर्मराज विकथा वचन, निद्रा विषय कषाय ।
पंच प्रमाद दशा सहित, परमादी मुनिराय ॥ ७८ ॥

३१ सा—पंच महाव्रत पाले पंच सुमती संभाले, पंच इंद्रि जीति भयो भोगि चित चैनको ॥ षट आवश्यक क्रिया दर्वित भावित साधे प्रासुक धरामें एक आसन है सैनको ॥ मंजन न करे केश लुंचे तन वस्त्र मुंचे, त्यागे दंतवन पैं सुगंध श्वास वैनको ॥ ठाड़ो करसे आहर लघु भुंजी एक वार, अठाइस मूल गुण धारी जती जैनको ॥ ७९ ॥

हिंसा मृषा अदत्त धन, मैथुन परिग्रह साज ।
किंचित त्यागी अणुव्रती, सब त्यागी मुनिराज ॥ ८० ॥
चले निरखि भाखे उचित, भखे अदोष अहार ।
लेय निरखि, डारे निरखि सुमति पंच परकार ॥ ८१ ॥
समता वंदन स्तुति करन, पडकोनो स्वाध्याय ।
काऊत्सर्ग मुद्रा धरन, ए षडावश्यक भाय ॥ ८२ ॥

३१ सा—थविर कलपि जिन कलपि दुवीध मुनि, दोउ वनवासी दोउ नगन रहत हैं ॥ दोउ अठावीस मूल गुणके धरैया दोउ, सरवस्वि त्यागी व्है विरागता गहत है ॥ थविर कलपि ते जिन्हके शिष्य शाखा संग, बैठिके सभामें धर्म देशना कहत है ॥ एकाकी सहज जिन कलपि तपस्वी घोर, उदैकी मरोरसों परिसह सहत हैं ॥ ८३ ॥

३१ सा—ग्रीषममें धूपथित सीतमें अकंप चित्त, भूख धरे धीर प्यासे नीर न चहत है ॥ डंस मसकादिसों न डरे भूमि सैन करे वध वंध वियामें

अडोल व्है रहत हैं ॥ चर्या दुख भरे तिण फाससों न थरहरे, मल दुरगंधकी गिलानी न गहत हैं ॥ रोगनिको करे न इलाज ऐसो मुनिराज, वेदनीके उदै ये परिसह सहत हैं ॥ ८४ ॥

छंद—येते संकट मुनि सहे, चारित्र मोह उदोत । लज्जा संकुच दुख धरे, नगन दिगंबर होत । नगन दिगंबर होत, श्रोत्र रति स्वाद न सेवे । त्रिय सनमुख दृग रोक, मान अपमान न बेवे । थिर व्है निर्भय रहे, सहे कुवचन जग जेते । भिक्षुक पद संग्रेह, लहे मुनि संकट येते ॥ ८५ ॥

अल्प ज्ञान लघुता लखे, मति उत्कर्ष विलोय ।
ज्ञानावरण उदोत मुनि, सहे परीसह दोय ॥ ८६ ॥
सहे अदर्शन दुर्दशा, दर्शन मोह उदोत ।
रोके उमंग अलाभकी, अंतरायके होत ॥ ८७ ॥

३१ सा—एकादश वेदनीकी चारित मोहकी सात, ज्ञानावरणीकी दोय एक अंतरायकी ॥ दर्शन मोहकी एक द्वाविंशति बाधा सब, केई मनसाकि केई वाक्य केई कायकी ॥ काहूकों अलप काहू बहुत उनीस ताई, एकहि समैमें उदै आवे असहायकी ॥ चर्या थिति सज्या मांहि एक शीत उष्ण मांहि, एक दोय होहि तीन नांहि समुदायकी ॥ ८८ ॥

नाना विधि संकट दशा, सहि साधे शिव पंथ ।
थविर कल्प जिनपल्प धर, दोऊ सम निग्रंथ ॥ ८९ ॥
जो मुनि संगतिमें रहे, थविर कल्प सो जान ॥
एकाकी ज्याकी दशा, सो जिनकल्प वखान ॥ ९० ॥

चौ०—थविर कल्प धर कछुक सरागी। जिन कल्पी महान वैरागी ॥
इति प्रमत्त गुणस्थानक धरनी। पूरण भई जथारथ वरनी ॥ ९१ ॥
अब वरणो सप्तम विसरामा। अपरमत्त गुणस्थानक नामा ॥
जहां प्रमाद क्रिया विधि नासे। धरम ध्यान स्थिरता परकासे ॥ ९२ ॥

प्रथम करण चारित्रको, जासु अंत पद होय।
जहां आहार विहार नहीं, अप्रमत्त है सोय ॥ ९२ ॥

चौ०—अब वरणूं अष्टम गुणस्थाना। नाम अपूरव करण वखाना ॥
कछुक मोह उपशम परि राखे। अथवा किंचित क्षय करि नाखे ॥ ९३ ॥
जे परिणाम भये नहि कबही। तिनको उदै देखिये जबही ॥
तब अष्टम गुणस्थानक होई। चारित्र करण दूसरो सोई ॥ ९४ ॥
चौ०—अब अनिवृत्ति करण सुनि भाई। जहां भाव स्थिरता अधिकाई ॥
पूरव भाव चलाचल जे ते। सहज अडोल भये सब ते ते ॥ ९५ ॥
जहां न भाव उलट अधि आवे। सो नवमो गुणस्थान कहावे ॥
चारित्र मोह जहां बहु छीजा। सो है चरण करण पद तीजा ॥ ९६ ॥
चौ०—कहूं दशम गुणस्थान दुशाखा। जहां सूक्षम शिवकी अभिलाखा ॥
सूक्षम लोभ दशा जहां लहिये। सूक्षम सांपराय सो कहिये ॥ ९७ ॥
चौ०—अब उपशांत मोह गुणठाना। कहों तासु प्रभुता परमाना ॥
जहां मोह उपसम न भासे। यथाख्यात चारित परकासे ॥ ९८ ॥

जहां स्पर्शके जीव गिर, परे करे गुण रद्द।
सो एकादशमी दशा, उपसमकी सरहद्द ॥ ९९ ॥

चौ०—केवलज्ञान निकट जहा आवे। तहां जीव सब मोह क्षपावे॥
प्रगटे यथाख्यात परधाना। सो द्वादशम क्षीण गुण ठाना॥ १००॥

षट साते आठे नवे, दश एकादश थान।
अंतर्मुहूरत एकवा, एक समै थिति जान॥ १०१॥
क्षपक श्रेणि आठे नवे, दश अर वलि बार।
थिति उत्कृष्ट जघन्यभी, अंतर्मुहूरत काल॥ १०२॥
क्षीणमोह पूरण भयो, करि चूरण चित चाल।
अब संयोग गुणस्थानकी, वरणूं दशा रसाल॥ १०३॥

३१ सा—जाकी दुःख दाता घाती चोकरी विनश गई, चोकरी अघाती जरी जेवरी समान है॥ प्रगटे तब अनंत दर्शन अनंत ज्ञान, वीरज अनंत सुख सत्ता समाधान है॥ जाके आयु नाम गोत्र वेदनी प्रकृति ऐसी, इक्यासी चौर्‍यासी वा पच्यासी परमान है॥ सोहै जिन केवली जगतवासी भगवान, ताकी ज्यो अवस्था सो संयोग गुणथान है॥ १०४॥

३१सा—जो अडोल परजंक मुद्राधारी सरवथा, अथवा सु काउसर्ग मुद्रा थिर पाल है॥ क्षेत्र सपरस कर्म प्रकृतीके उदे आये, बिना डग भरे अंतरिक्ष जाकी चाल है॥ जाकी थिति पूरव करोड़ आठ वर्ष घाटि, अंतर मुहूरत जघन्य जग जाल है॥ सोहै देव अठारह दूषण रहित ताको, बनारसि कहे मेरी वंदना त्रिकाल है॥ १०५॥

छंद—दूषण अठारह रहित, सो केवली संयोग। जनम मरण जाके नहीं, नाहि निद्रा भव रोग। नाहि निद्रा भय रोग, शोक विस्मय मोहमति।

जरा खेद पर स्वेद, नांहि मद वैर विषै रति । चिंता नांहि सनेह नांहि, जहां प्यास न भूख न । थिर समाधि सुख, रहित अठारह दूषण ॥ १०६ ॥

वानी जहां निरक्षरी, सप्त धातु मल नांहि । केश रोम नख नहि बढे, परम औदारिक मांहि, परम औदारिक मांहि, जहां इंद्रिय विकार नसि । यथाख्यान चारित्र प्रधान थिर शुकल ध्यान ससि । लोकाऽलोक प्रकाश, करन केवल रजधानी । सो तेरम गुणस्थान, जहां अतिशयमय वानी । १०६ ।

यह संयोग गुणथानकी, रचना कही अनूप ।
अब अयोग केवल दशा, कहूं यथारथरूप ॥ १०८ ॥

जहां काहू जीवकों असाता उदै साता नांहि, काहूकों असाता नांहि साता उदै पाईये ॥ मन वच कायासों अतीत भयो जहां जीव, जाको जस गीत जग जीत रूप गाईये ॥ जामें कर्म प्रकृतीकी सत्ता जोगि जिनकीसी, अंतकाल द्वै समैमें सकल खपाईये ॥ जाकी थिति पंच लघु अक्षर प्रमाण सोइ, चौदहो अयोगी गुणठाना ठहराईये ॥ १०९ ॥

चौदह गुणस्थानक दशा, जगवासी जिय भूल ।
आश्रव संवर भाव द्वै, बंध मोक्षको मूल ॥ ११० ॥

चौ०—आश्रव संवर परणति जोलों । जगवासी चेतन है तोलों ॥
आश्रव संवर विधी व्यवहारा । दोऊ भवपथ शिवपथ धारा ॥ १११ ॥
आश्रवरूप बंध उतपाता । संवर ज्ञान मोक्ष पद दाता ॥
जो संवरसों आश्रव छीजे । ताकों नमस्कार अब कीजे ॥ १११ ॥

३१ सा—जगतके प्राणि जीति व्है रह्यो गुमानि ऐसो, आश्रय असुर दुखदानि महाभीम है ॥ ताको परताप खंडिवेको परगट भयो, धर्मको धरैया कर्म रोगको हकीम है ॥ जाके परभाव आगे भागे परभाव सब, नागर नवल सुख सागरकी सीम है ॥ संवरको रूप धरे साधे शिव राह ऐसो, ज्ञान पातसाह ताकों मेरी तसलीम है ॥ ११३ ॥

चौ०—भयो ग्रंथ संपूरण भाखा । वरणी गुणस्थानककी शाखा ॥
वरणन और कहांलों कहिये । जथा शक्ति कहि चुप व्है रहिये ॥ १ ॥

लहिए पार न ग्रंथ उदधिका । ज्योंज्यों कहिये त्योंत्यों अधिका ॥
ताते नाटक अगम अपारा अलप कवीसुरकी मतिधारा ॥ २ ॥

समयसार नाटक अकथ, कविकी मति लघु होय ।
ताते कहत बनारसी, पूरण कथै न कोय ॥ ३ ॥

३१ सा—जैसे कोऊ एकाकी सुभट पराक्रम करि, जीते केहि भांति चक्री कटकसों लरनो ॥ जैसे कोऊ परवीण तारूं भुज भारू नर, तिरे कैसे स्वयंभू रमण सिंधु तरनो ॥ जैसे कोउ उद्यमी उछाह मन मांहि धरे, करे कैसे कारिज विधाता कोसो करनो ॥ तैसे तुच्छ मति मेरी तामें कविकला थोरि, नाटक अपार मैं कहांलों यांहि वरनो ॥ ४ ॥

३१ सा—जैसे वट वृक्ष एक तामें फल है अनेक, फल फल बहु बीज बीज बीज वट है ॥ वट मांहि फल फल मांहि बीज तामें वट, कीजे जो विचार तो अनंतता अघट है ॥ तैसे एक सत्तामें अनंत गुण परयाय, पर्योमें अनंत नृत्य तामेंऽनंत ठट है ॥ ठटमे अनंत कला कलामें

अनंत रूप, रूपमें अनंत सत्ता ऐसो जीव नट है ॥ ५ ॥ ब्रह्मज्ञान आकाशमें, उडे सुमति खग होय। यथा शक्ति उद्यम करे, पार न पावे कोय ॥६॥

चौ०—ब्रह्मज्ञान नभ अंत न पावे। सुमति परोक्ष कहांलों धावे ॥
जिहि विधि समयसार जिनि कीनो। तिनके नाम कहूं अब तीनो॥७॥

३१ सा—प्रथम श्रीकुंदकुंदाऽचार्य गाथा बद्ध करे, समैसार नाटक विचारि नाम दयो है ॥ ताहीके परंपरा अमृतचंद्र भये तिन्हे, संसक्त कलसा समारि सुख लयो है ॥ प्रगटे बनारसी गृहस्थ सिरीमाल अब, किये है कवित्त हिए बोध बीज बोयो है ॥ शबद अनादि तामें अरथ अनादि जीव, नाटक अनादि यों अनादिहीको भयो है ॥ ८ ॥

चौ०—अब कछुं कहूं जथारथ बानी। सुकवि कुकवि कथा कहानी ॥
प्रतमहि सुकवि कहावे सोई। परमारथ रस वरणे जोई ॥ ९ ॥
कलपित वात हित नहि आने। गुरु परंपरा रीत वखाने ॥
सत्यारथ सैली नहि छंडे। मृषा वादसों प्रीत न मंडे ॥ १० ॥

छंद शब्द अक्षर अरथ, कहे सिद्धांत प्रमान।
जो इहविधि रचना रचे, सो है कवी सुजान ॥ ११ ॥

चौ०—अब सुनु कुकवि कहों है जैसा। अपराधी हिय अंध अनेसा ॥
मृषा भाव रस वरणे हितसों। नई उकति जे उपजे चितसों ॥ १२ ॥
ख्याति लाभ पूजा मन आने। परमारथ पथ भेद न जाने ॥
वानी जीव एक करि बूझे। जाकों चित जड ग्रंथ न सूझे ॥ १३ ॥

वानी लीन भयो जग डोले। वानी ममता त्यागि न बोले ॥
है अनादि वानी जगमांही। कुकवि बात यह समुझे नांही॥१४॥

३१ सा—जैसे काहु देशमें सलिल धारा कारंजकी, नदीसों निकसि फिर नदीमें समानी है ॥ नगरमें ठोर ठोर फैली रहि चहुं ओर। जाके ढिग वहे सोई कहे मेरा पानी है ॥ त्योंहि घट सदन सदनमें अनादि ब्रह्म, वदन वदनमें अनादिहीकी वानी है ॥ करम कलोलसों उसासकी बयारि वाजे, तासों कहे मेरी धुनि ऐसी मूढ प्राणी है ॥ १५ ॥

ऐसे हैं कुकवि कुधी, गहे मृषा पथ दोर।
रहे मगन अभिमानमें, कहे औरकी और ॥ १६ ॥
वस्तु स्वरूप लखे नहीं, बाहिज दृष्टि प्रमान।
मृषा विलास विलोकिके, करे मृषा गुण गान ॥ १७ ॥

३१ सा—मांसकी गरंथि कुच कंचन कलश कहे, कहे मुख चंद जो सलेषमाको घरु है ॥ हाड़के सदन यांहि हीरा मोती कहे तांहि, कांसके अधर ऊठ कहे बिंब फरु है ॥ हाड दंड भुजा कहे कोल नाल काम क्षुधा, हाडहीके थंभा जंघा कहे रंभा तरु है ॥ योंही झूठी जुगति बनावे औ कहावे कवि, येते पर कहे हमे शारदाको वर है ॥ १८ ॥

चौ०—मिथ्यामति कुकवि जे प्राणी। मिथ्या तिनकी भाषित वाणी ॥
मिथ्यामति सुकवि जो होई। वचन प्रमाण करे सब कोई ॥ १९॥

वचन प्रमाण करे सुकवि, पुरुष हिये परमान।
दोऊ अंग प्रमाण जो, सोहे सहज सुजान ॥ २० ॥

९

चौ०—अब यह बात कहूंहूं जैसे । नाटक भाषा भयो सु ऐसे ॥
कुंदकुंदमुनि मूल उधरता । अमृतचंद्र टीकाके करता ॥ २१ ॥
समेसार नाटक सुखदानी । टीका सहित संस्कृत वानी ॥
पंडित पढे अरु दिढमति बूझे । अलप मतीको अरथ न सूझे ॥ २२ ॥
पांडे राजमल्ल जिनधर्मी । समयसार नाटकके मर्मी ॥
तिन्हे गरंथकी टीका कीनी । बालबोध सुगम करि दीनी ॥ २३ ॥
इहविधि बोध वचनिका फैली । समै पाइ अध्यातम सैली ॥
प्रगटी जगमांहीं जिनवानी । घरघर नाटक कथा बखानी ॥ २४ ॥
नगर आगरे मांहि विख्याता । कारण पाइ भये बहुज्ञाता ॥
पंच पुरुष अति निपुण प्रवीने । निसिदिन ज्ञान कथा रस भीने ॥२५॥
रूपचंद पंडित प्रथम दुतिय चतुर्भुज नाम ।
तृतिय भगोतीदास नर, कोरपाल गुण धाम ॥ २६ ॥
धर्मदास ये पंच जन, मिलि बैठहि इक ठोर ।
परमारथ चरचा करे, इनके कथा न और ॥ २७ ॥
कबहूं नाटक रस सुने, कबहूं और सिद्धंत ।
कबहूं बिंग बनायके, कहे बोध विरतंत ॥ २८ ॥
चितचकोर अर धर्म धुर, सुमति भगौतीदास ।
चतुर भाव थिरता भये, रूपचंद परकास ॥ २९ ॥
इसविधि ज्ञान प्रगट भयो, नगर आगरे माहिं ।
देस देसमें विस्तरे, मृषा देशमें नाहि ॥ ३० ॥

जहां तहां जिनवाणी फैली । लखे न सो जाकी मति मैली ॥
जाके सहज बोध उतपाता । सो ततकाल लखे यह वाता ॥ ३१ ॥

घटघट अंतर जिन बसे, घटबट अंतर जैन ।
मत मदिराके पानसो, मतमाला समुझैन ॥ ३२ ॥

बहुत बढाई कहांलों कीजे । कारिज रूप बात कहि लीजे ॥
नगर आगरे मांहि विख्याता । बनारसी नामे लघु ज्ञाता ॥ ३३ ॥
तामें कवित कला चतुराई । कृपा करे ये पांचौं भाई ॥
ये प्रपंच रहित हित खोले । ते बनारसीसों हँसि बोले ॥ ३४ ॥
नाटक समैसार हित जीका । सुगम रूप राजमल टीका ॥
कवित बद्ध रचना जो होई । भाखा ग्रंथ पढै सब कोई ॥ ३५ ॥
तब बनारसी मनमें आनी । कीजे तो प्रगटे जिनवानी ॥
पंच पुरुषकी आज्ञा लीनी । कवित बंधकी रचना कीनी ॥ ३६ ॥
सोरहसे तिराणवे वीते । आसु मास सित पक्ष वितीते ॥
तेरसी रविवार प्रवीणा । ता दिन ग्रंथ समापत कीना ॥ ३७ ॥

सुख निधान शक बंधनर, साहिब साह किराण ।
सहस साहि सिर मुकुट मणि, साह जहां सुलतान ।
जाके राजसु चैंनसो, कीनों आगम सार ।
इति भीति व्यापे नयी, यह उनको उपकार ॥ ३९ ॥
समयसार आतम दरव, नाटक भाव अनंत ।
सोहै आगम नाममें, परमारथ विरतंत ॥ ४० ॥

———

स्वाध्यायोपयोगी जैनग्रन्थ।

सर्वार्थसिद्धि वचनिका	४)	धर्मविलास	१)
आत्मख्यातिसमयसार	४)	भगवतीआराधना	४)
पद्मनन्दीपच्चीसी	४)	स्याद्वादमंजरी	४)
गोम्मटसार कर्मकांड	२)	नाटकसमयसार	२॥)
पुरुषार्थसिद्ध्युपाय	१)	बृहद्द्रव्यसंग्रह	२)
धर्मरत्नोद्योत	१)	मोक्षमार्गप्रकाश	१|||)
प्रवचनसार	३)	द्रव्यसंग्रह	॥)
ज्ञानार्णव	४)	चर्चाशतक	|||)
षट्पाहुड	१)	न्यायदीपिका	|||)

पुराण और चरित्र।

पांडवपुराण	२|||)	चारुदत्तचरित्र	१)
यशोधरचरित्र बड़ा	२)	श्रेणिकचरित्र	१|||)
प्रद्युम्नचरित बड़ा	२|||)	श्रीपालचरित्र	१=)
प्रद्युम्नचरित्रसार	|=)	जम्बूस्वामीचरित्र	|)
सप्तव्यसनचरित	|||=)	भद्रबाहुचरित्र	|||=)
धन्यकुमार चरित्र	|||)	हनुमानचरित्र	|=)

कथा।

श्रुतावतारकथा	≡)	दर्शनकथा	≡)
निशिभोजनकथा	=)	रविव्रतकथा	-)

विशेष निवेदन.

सब जगहके जैनग्रंथ अर्थात् जैनग्रन्थ रत्नाकर-हिन्दी जैन साहित्य प्रसारक, निर्णयसागर आदिके हमारे यहांसे मिल सकते हैं। कोई भी ग्रंथ आपको मंगाना हो नीचेका पता ध्यानमें रख लीजिये। हिसाब किताब साफ २ रहता है। एकबार मंगाकर अवश्य परीक्षा कीजिये।

हमारा पताः—

मेनेजर-जैन औद्योगिक कार्यालय,
चंदावाड़ी-बम्बई. नं. ४

Printed by Chintaman Sakharam Deole, in the Bombay Vaibhav Press, Servants of India Society's Home, Sandhurst Road, Girgaum, Bombay

And

Published by Pannalal Mulchand Jain, Chandawari, opposite Madhavbag; Bombay, No. 4.